श्री आवश्यकसूत्र

श्री अस्वाध्यायिक निर्युक्ति: (असज्झाइय निज्जुत्ती)

हरिभद्रीय वृत्ति गा.1322 वीर पुरुषों द्वारा प्रज्ञप्त असज्झाय निर्युक्ति को कहूँगा, जिसे जानकर सुविहित मुनि प्रवचन के सार को प्राप्त करेंगे।

गा.1323 असज्झाय 2 प्र.- I आत्म समुत्थ II परसमुत्थ। उसमें परसमुत्थ असज्झाय 5 प्र. की जानना।

★ स्वाध्याय एव स्वाध्यायिकं। कारण में कार्य के उपचार से अस्वाध्याय के कारण रुधिरादि भी अस्वाध्यायिक कहे जाते हैं।

अव. परसमुत्थ में बहुत वक्तव्य होने से वही कहते हैं-

गा.1324 (द्वारगा.) 1. संयम घातक 2. उत्पात 3. सादिव्य 4. युद्धग्रह 5. शारीर। घोषणा- म्लेच्छ राजा- कोई प्रमाद से छलित हुआ।

★ 1. संयम घातक = कोहरा वि. संयम का विनाश करने वाला।

2. उत्पात = सचित्त धूल वि. गिरना वि. उत्पात से हुई असज्झाय औत्पातिक।

3. सादिव्य = दिव्य के साथ सादिव्य। गंधर्वनगरादि देव द्वारा किए हुए।

4. युद्धग्रह = युद्ध। यह भी अस्वाध्याय का निमित्त है।

5. शारीर = तिर्यंच-मनुष्य के पुद्गलादि।

★ इन 5 असज्झाय में सज्झाय करते हुए को आत्म और संयम विराधना।

अव. गा.1324 के पश्चार्ध को के अवयवार्थ को कहते हैं-

क्षितिप्रतिष्ठित x जितशत्रु राजा ने घोषणा कराई- म्लेच्छ राजा आ रहा है, अत: ग्राम-कुल-नगर छोड़कर किले में आ जाओ, नहीं तो नष्ट हो जाएँगे x जो किले में आ गए वे बच गए, बाकी म्लेच्छ द्वारा लूटे गए x म्लेच्छ द्वारा लूटने के बाद जो बचा वह 'मेरी आज्ञा का भंग किया' ऐसे राजा ने ले लिया xx

ऐसे असज्झाय में स्वाध्याय करने वाले को दोनों दंड होते हैं- इसलोक में देव परेशान करे (पागल या रोग करे)

तथा अस्वाध्याय में स्वाध्याय करने का प्रायश्चित्त आए। परलोक में इन ज्ञानादि का कोई फल नहीं मिलता।

अव. दृष्टांत का उपनय –

गा. 1326 राजा = तीर्थंकर, नगरजन = साधु, घोषणा = सूत्र, म्लेच्छ = असज्झाय, रत्न-धनादि = ज्ञानादि)

अव. गा. 1324 में प्रमाद से स्खलना कहा। उसे ही कहते हैं –

गा. 1327 पोरसी पूरी होने में थोड़ा काल बाकी होने पर जो 'कालवेला हुई' ऐसा सुनकर भी अध्ययन (यानि पाठ) और (अपि शब्द से) व्याख्यान करता है, ज्ञानादि के सार से रहित उसके आज्ञादि लंघन करने से स्खलना (देव द्वारा) होती है अथवा और ज्ञानादि विफल होने से वह संसार में भटकता है।

अव. 1. संयम घातक अस्वाध्याय –

गा. 1328 संयम घातक 3 प्र. – कोहरा, भिन्नवर्षा, सचित्तरज। इस अस्वाध्याय में 3 द्रव्य, क्षेत्र में जहाँ, काल में जब तक और भाव में सभी (चेष्टा) छोड़ना।

★ भिन्नवर्षा वि. भाष्य गा. 219 में कहेंगे।

★ ये 3 संयम घातक अस्वाध्याय में 3 द्रव्य (कोहरा, भिन्न वर्षा, सचित्तरज) का त्याग करना।

★ (अर्थात् कोहरा वि. में स्वाध्याय का त्याग करे)
क्षेत्र से जिस क्षेत्र में कोहरा वि. गिरता हो, वहाँ जब उस क्षेत्र का त्याग करे। (अर्थात् इतने काल तक
काल से
या तो वह क्षेत्र छोड़, यदि क्षेत्र में रहना पड़े तो इतने काल तक स्वाध्याय छोड़)।
भाव से उस क्षेत्र-काल में काउस्सग्ग, वाचना वि. सब चेष्टा छोड़े।

अव. इन 3 प्र. (हार गा. 1324) के अस्वाध्याय में किस वस्तु को कैसे त्यागना, इसका दृष्टांत-

गा. 1329 1330 एक राजा के 3 पुरुषों ने एकदा अत्यंत विषम कितना जीता & खुश होकर राजा ने उन्हें नगर में इच्छानुसार घूमने की छूट दी और वे जो भी वस्त्रादि-भक्तादि खरीदते हैं

उनके पैसे राजा लेता है। इन 5 में से एक पर अधिक खुश राजा उसे घर-दुकान-गली सभी जगह घूमने की छूट देता है। जो इन लोगों को रोकता है उसे राजा सजा करता है।

★ उपसंहार ⇒ 5 पुरुष = 5 प. के असज्झाय, 1 पुरुष पर ज्यादा खुश = संयम घातक असज्झाय। इस असज्झाय में कायोत्सर्ग, पडिलेहनादि सभी चेष्टा बंद; शेष चार असज्झाय में मात्र स्वाध्याय बंद, बाकी सभी क्रिया की जाती है, उत्कालिक आवश्यकादि पढ़े जाते हैं।

अब. कोहरा वि. 3 प. के संयमोपघातक असज्झाय का स्वरूप—

भा. 219 गर्भमास में कोहरा। सचित्त रज में कुछ तालाश। वर्षा 3 प. - बुद्बुद्, तद्वर्ज और फुसित।

★ कार्तिक-मागसरादि महिनों (महा तक) में कोहरे का गर्भ (कारण) रहने से ये गर्भमास कहलाते हैं। कोहरा फैलते ही सूक्ष्म होने से सभी भोर वस्तु को अप्काय से युक्त करता है। उसी समय साधु सभी चेष्टा बंद करते हैं।

★ जंगल की सचित्त धूल हवा से उड़कर नगर में आए उसे रज कहते हैं। इसका लक्षण यह है कि ~~~ उस दिशा में कुछ लाल रंग दिखता है। यह रज यदि लगातार 3 दिन गिरती रहे तो सभी वस्तु को पृथ्वीकाय से युक्त करती है। ऐसा होने पर उत्पात (धूल की वृष्टि वि.) होने की संभावना है।

★ भिन्न वर्षा - 3 प. ⓐ बुद्बुद् - यह वर्षा बरसने पर पानी में बुलबुले होते हैं। सतत 3 दिन गिरने पर सबको पानी से युक्त करती है।

ⓑ तद्वर्ज - बुलबुले न हो ऐसी बारिश। 5 दिन में अप्काय से प्लावित।

ⓒ फुसित वर्ज - सूक्ष्म फुवारे (छींटें) गिरे। 7 दिन " " "।

अब. इन अस्वाध्याय में द्रव्यादि का त्याग—

भा. 220 द्रव्य में वही द्रव्य, क्षेत्र में जहाँ, काल में जब तक, भाव में श्वास-उन्मेष को छोड़कर स्थानभाषादि छोड़े।

★ द्रव्य में वही द्रव्य यानि कोहरा, सचित्त रज, भिन्न वर्षा का परिहार करे। शेष सुगम।

★ यहाँ आचरणा — सचित्त रज में 3 दिन बाद, भिन्नवर्षा में क्रमशः 3, 5, 7 दिन बाद सभी चेष्टा का

त्याग / अन्य मत - भिन्न वर्षा में 1, 2, 7 अहोरात्र बाद सभी चेष्टा का त्याग।

अत. सब चेष्टा कैसे बंद करे ? —

गा. 1331 वर्षात्राणावृत निष्कारण रहे। कार्य में जयणा से हाथ-आँख-उंगली की संज्ञा अथवा मुँहपत्ति से आवृत बोले।

★ कोई कारण न होने पर वर्षाकल्प की कामली (मोटी कामली) से शरीर ढाँककर सर्व अभ्यंतर यानि Room के अंदर Room ऐसे सबसे अंदर रहे।

अवश्य कर्तव्य या बोलने वाले कार्य में यह जयणा करे - हाथ से, अंकुरी वि. से, आँख के विकार से या उंगली से इशारा करे। यदि इशारे से न समझे तो मुहपत्ति रखकर जयणा से बोले। शौचादि के कार्य में जाना पड़े तो वर्षाकल्प कामली ओढ़कर जाए।

अत. 1. संग्रह घातक द्वार चूर्ण। 2. उत्पात द्वार (देखें गा. 1324 Pg. 3) —

गा. 1332 धूल, मांस, रुधिर, केश, शिला की वृष्टि, रजोद्घात। मांस-रुधिर की वृष्टि में अहोरात्र, शेष में जब तक वृष्टि हो तब तक सूत्र न पढ़े।

★ शिला यानि बरफ के ओले वि.।

अत. धूल - रजोद्घात की व्याख्या —

गा. 1333 पांशु (धूल) यानि अचित्त रज, दिशा रजस्वला हो वह रजोद्घात। वह हवा सहित या रहित होने पर सूत्र का परिहार करे।

★ धूएँ के आकारवाली, कुछ सफेद अचित्त रज पांशु कहलाती है। राजा की सेना पसार होने से जैसी धूल उड़ती है, वैसी धूल बिसात से गिरे, वह रजोद्घात।

अथवा उपर्युक्त सेना में से रज जानना। उद्घात धूएँ के आकार का जानना।

यह हवा सहित हो या रहित हो, सूत्र पोरसी का त्याग करे।

गा. 1334 ★ यह पांसु और रजोद्घात स्वाभाविक और अस्वाभाविक होते हैं। जो गर्जना - भूकंप - चंद्रग्रहणादि दिव्य सहित हो, वे अस्वाभाविक।

★ अस्वाभाविक होने पर अचित्त रज का काउसग्ग किया होने पर भी साधु स्वाध्याय न करे।
स्वाभाविक होने पर यदि चैत्र सुद 10 से लेकर चैत्र सुद पूनम तक (कोई 3 दिन) सतत अचित्त रज का काउसग्ग किया हो तो 1 वर्ष तक स्वाध्याय कर सकते हैं।

अव. 2. उत्पात द्वार पूर्ण। 4. सादिव्य द्वार (गा. 1324 Pg. 3) —

गा. 1335 गंधर्व, दिशा, विद्युत्, उल्का, गर्जित, यूपक, यक्षादिप्त। 1-1 पोरसी, गर्जित 2 पोरसी की असज्झाय करता है। (+ दिग्दाह)

★ गंधर्वनगर = किसी नगर पर उत्पात बताने संध्या में ~~उस नगर~~ किले-झरोखे वि. आकार वाला दूसरा नगर दिखता है। उसे कोई देव विकुर्वे।

★ ~~दिग्दाह = कोई दिशा में आग लगे। वि~~

★ इनमें से गंधर्व नगर और यक्षादीप्त अवश्य देवकृत होता है। शेष स्वाभाविक भी होते हैं, अस्वाभाविक भी। यदि स्पष्ट खबर न पड़े कि देवकृत है या नहीं तो भी स्वाध्याय का त्याग करे।

★ गंधर्वनगरादि सबमें 1-1 पोरसी असज्झाय। गर्जना में 2 पोरसी असज्झाय।

अव. दिग्दाह वि. का स्वरूप —

गा. 1336 ★ दिग्दाह = किसी दिशा में महानगर जलता हो ऐसा प्रकाश हो किंतु मात्र ऊपर प्रकाश हो, नीचे अंधकार दिखे। ऐसा छिन्नमूल वाला दिग्दाह।
उल्का = स्व देह के रंग की रेखा करते हुए जो गिरे वह उल्का। अथवा रेखारहित किंतु उजाला करते हुए जो गिरे वह उल्का।

★ यूपक = जब संध्या की प्रभा और चंद्र की प्रभा एक हो (अर्थात् संध्या के समय चंद्रोदय होने से दोनों की Light एक साथ Mix हो)। भावार्थ यह है कि शुक्ल पक्ष के पहले 3 दिन

(यानि अमावस के बाद प्रथम ३ दिन ~~सुबह सूर्योदय~~ शाम सूर्यास्त की संध्या में) संध्या के प्रकाश को चंद्र की प्रभा ढाँक लेती है। ऐसे संध्या को ढाँकने वाला चंद्र यूपक कहा जाता है। ऐसा यूपक होने पर संध्या का समय कब पूर्ण ~~नहीं~~ होता है, वह खबर नहीं पड़ती। अतः इन ३ दिन में संध्या दूर होती हुई न जानने पर साधु प्रादोषिक कालग्रहण नहीं करते और प्रादोषिक (यानि रात का प्रथम प्रहर) सूत्र पोरसी नहीं करते।

गा. 1337 ★ कुछ आ. के मत में ये यूपक शुभाशुभ के सूचक हैं। जिस वस्तु की उत्पत्ति जगत् के शुभाशुभ की सूचक है, उसे अभोद्य कहते हैं। ये यूपक भी अभोद्य हैं। ये सूर्य के ~~क~~ किरणों के फैलाव से उत्पन्न होते हैं। इनके मत में यूपक आचीर्ण है अर्थात् स्वाध्याय नहीं छोड़ा जाता।

★ कुछ के मत में अनाचीर्ण है। इनके मत में ३ प्रहर (सुद 1-2-3 के 1-1 प्रहर) असज्झाय।

गा. 1338 चंद्र-सूर्योपराग में, निर्घात-गुंजित में अहोरात्र / संध्या ,, ५ प्रतिपदा में / ग्रीष्म की प्रतिपदा में नियमा।

★ चंद्र-सूर्योपराग = ग्रहण। इसे आगे 1343 गा. में कहेंगे।

★ निर्घात = बादल सहित या रहित आकाश में व्यंतर कृत महागर्जना जैसा आवाज।

★ ~~मुंजित~~ गुंजित = ऐसा ही एक विशेष प्र. का आवाज।

★ सामान्य से चंद्रग्रहण-सूर्यग्रहण-निर्घात-गुंजित में एक अहोरात्र स्वाध्याय त्याग।

निर्घात और गुंजित में अंतर → निर्घात में दूसरे दिन सूर्योदय होने पर एक अहोरात्र की असज्झाय पूरी हो जाती है जबकि गुंजित में जिस समय (वेला में) गुंजित हुआ हो, दूसरे दिन उसी समय तक एक अहोरात्र।

★ ५ संध्या = सूर्योदय, अपराह्न, सूर्यास्त, मध्यरात्रि। इनमें असज्झाय।

★ ५ प्रतिपदा यानि ५ एकम (गा. 1339 में कहेंगे) इन असज्झाय में अनागाढ़ जोग वालों का नियमा निषेध करे, आगाढ़ जोगी का नहीं।

गा. 1339 आषाढ़ी, इंद्रमहोत्सव, कार्तिक, सुग्रीष्म – ये महामहोत्सव और इनकी ही प्रतिपदा (वदि 1) जानना।

★ 1. आषाढ़ पूनम को आषाढ़ी महोत्सव। चार देश में श्रावण पूनम को यह महोत्सव होता है।

2. इंद्रमहोत्सव आसो पूनम को।

3. कार्तिक पूनम को कार्तिक महोत्सव।

4. चैत्री पूनम को ग्रीष्म महोत्सव।

जिस दिन से महोत्सव शुरु हो, उस दिन से इस पूनम तक और इस पूनम की प्रतिपदा तक असज्झाय। जिन नगर में ये महोत्सव हो, वहाँ असज्झाय। ग्रीष्म महोत्सव (चैत्री पूनम) की सभी जगह Compulsory असज्झाय।

अव. प्रतिषिद्ध काल में स्वाध्याय करने को दोष –

गा. 1340 श्रुतोपयोग और तपोपधान उत्तम हैं किंतु प्रतिषिद्ध काल में ये भी कर्मबंध के लिए होते हैं।

गा. 1341 छलना के अवशेष से प्रतिपदा में भी महोत्सव अनुसरता है। महोत्सव में व्याकुलता से असंमानित का संमान।

★ प्र. आषाढ़ी वि. उत्सव तो प्रायः पूनम तक ही होते हैं अतः एकम तक असज्झाय क्यों?

उ. (1) आषाढ़ी वि. उत्सव में क्रीड़ा प्रिय (घूमते) व्यंतरों से छलना संभव है और उसका अवशेष एकम पास में होने से एकम को भी आ सकता है, अतः एकम को असज्झाय।

(2) महोत्सव में व्याकुल होने से गृहस्थों द्वारा भोजनादि से जिनका सन्मान न किया गया हो, उनका एकम को सम्मान होने से, एकम को भी उत्सव अनुसरता है। अतः असज्झाय है।

यह प्रक्षेप गाथा लगती है किंतु उपयोगी होने से व्याख्या की गई। (टीप्पणक)

गा. 1342 ★ सरागसंयमी इंद्रियविषयादि में ऐसे भी प्रमाद युक्त होता है और महोत्सव के दिनों में विशेष से प्रमाद वाला होता है। उस प्रमादयुक्त को देव छल कर सकता है। अल्पऋद्धि वाला देव उसे पागल बनाना या लंबे रोग करने वि. रूप छलना करता है।

अर्ध सागरोपम से न्यून स्थिति वाला देव जयणा युक्त साधु को छल नहीं कर सकता। अर्ध सा. से ऊपर स्थिति वाला देव जयणा युक्त साधु को भी छल सकता है, उस देव का सामर्थ्य है, पूर्व वैर वि. कारण से छल करता है।

अत. गा. 1338 में कहे चंद्र सूर्योपराग –

गा. 1343 चंद्रग्रहण में उत्कृष्ट 12, जघन्य 8 पोरसी असज्झाय। सूर्य ग्रहण में जघन्य 12 पोरसी उत्कृष्ट 16 पहर असज्झाय।

★ चंद्र ग्रहण में

→ उदय में ही ग्रसित हो तो वह रात्रि, और ~~[illegible]~~ के 4 पहर बाद वाला अहोरात्र के 8 पहर = 12 पहर।

→ उत्पात सहित पूरी रात ग्रसित हो और ग्रसित चंद्र ही अस्त हो तो रात + अहोरात्र = " "

→ (धूल वृष्टि वि. बादल होने से रात को चंद्रग्रहण न दिखे परंतु शंका हो तो रात के 4 पहर स्वाध्याय न करे। फिर सुबह ग्रसित चंद्र डूबता दिखे तो एक अहोरात्र के 8 पहर, कुल 12 पहर।

★ सूर्यग्रहण में → अस्त होते हुए सूर्य ग्रसित हो इस रात को उपहत रात्रि कहते हैं। उस उपहत रात के 4 पहर + 1 अहोरात्र के 8 प. = 12 पहर।

→ उदय होते हुए सूर्य ग्रसित हो तो वह दूषित अहोरात्र + 1 अहोरात्र = 16 पहर।

→ धूल-सांसारि वृष्टि के साथ सूर्य ग्रहण हो और ग्रसित सूर्य अस्त हो तो दूषित दिन + एक दूसरा दिन = 16 पहर।

→ बादल होने से ग्रहण न दिखे परंतु शंका हो तो उस दिन 4 पहर स्वाध्याय त्याग। सूर्यास्त के समय सूर्य ग्रसित दिखे तो रात के 4 पहर + 1 अहोरात्र = 16 पहर।

गा. 1344 ★ प्र. अहोरात्र कैसे गिनना? (अर्थात् जिस वेला से ग्रहण चालू हो, दूसरे दिन उस वेला तक अहोरात्र मानना?) उ. नहीं, सूर्योदय तक ही अहोरात्र मानना। आचरणा ऐसी है कि चंद्र ग्रहण पूर्ण होने के बाद चंद्र अस्त हो तो रात्रि के शेष भाग में ही असज्झाय तथा सूर्य ग्रहण पूर्ण होने के बाद सूर्यास्त हो तो दिन का शेष भाग और रात्रि छोड़ना।

★ प्र. सूर्य में 16 पहर और चंद्र में 12 पहर क्यों? उ. सूर्योदय से अहोरात्र शुरू होती है और चंद्र ग्रहण नियमा रात को ही होता है अतः उस दिन के 4 पहर कम होते हैं।

अब 3. सादित्य द्वार पूर्ण हुआ। 4. व्युद्ग्रह द्वार—

गा. 1345 → राजा-राजा, 2 सेनाधिपति, 2 महत्तम व्यक्ति, 2 गाँव के मुखिया, 2 पुरुष, 2 महत्व या 2 स्त्री के
1346 बीच युद्ध हो

→ जैसे किसी देश में लोग द्यूत से खेलते हैं, वैसे दूसरे देशों में मुँग वि. के आटे से खेलते हो (हिप्पणक)

→ परस्पर पत्थर फेंकने द्वारा युद्ध हो

→ रेती वि. के ढगले पर क्रीड़ा या युद्ध चलता हो।

~~इन सब कारणों में जब तक क्रीड़ा या युद्ध चले तब तक स्वाध्याय त्याग।~~

→ शत्रु आने से देश में संक्षोभ हो

→ राजा मर जाए, तब भय न होने पर भी अन्य राजा न बने तब तक असज्झाय।

→ राजा जिंदा होने पर भी भय होने पर असज्झाय।

→ ~~इन सब कारणों~~ कारणों में जब तक भय हो तब तक स्वाध्याय न करे और भय खत्म होने के बाद
गा. 1347 1 अहोरात्र छोड़े। इन असज्झाय में स्वाध्याय करने से नुकसान—
1348

→ युद्ध समय बहुत व्यंतर घूमते हैं। वे छलना करे।

→ अवचनहीलता हो कि 'ये साधु को दूसरे के दुःख की चिंता नहीं करते'। लोगों को अप्रीति।

ये राजा की मृत्यु में असज्झाय का कारण कहा। अन्य सेनाधिपति वि. की मृत्यु पर—

→ जिस दिन मृत्यु हो, वह अहोरात्र छोड़े।

इसमें लोग आक्रोश करे या कुपात्रय से निकाल भी दे।

अथवा इन असज्झाय में धीमे आवाज से स्वाध्याय या अनुप्रेक्षा करे।

कोई अनाथ व्यक्ति मरे और शरीर छिन्न हो तो शरीर 100 हाथ दूर न होने तक असज्झाय। यदि शरीर अखंड हो, छिन्न न हो तो असज्झाय नहीं होती किंतु खराब वस्तु ~~होने~~ 100 हाथ में होने से आचरणा स्वाध्याय त्याग की है। उस मुर्दे को 100 हाथ बाहर परठने पर स्वाध्याय करे।

अब यदि परठने वाला कोई न हो तो—
गा. 1349 यदि परठने वाला कोई न हो तो किसी पीढ़ श्रावक या भद्रक सरल श्रावक को कहकर परठाए

→ यदि वह न परठे तो साधु अन्य वसति में जाए।

→ यदि अन्य वसति न हो वृषभ साधु रात को उसे ले जाकर परठे।

→ यदि शरीर छिन्न हो, मांस के टुकड़े इधर-उधर फैला गए हो तो अशठभाव से जितने टुकड़े दिखे उतने परठे। न दिखते हुए टुकड़े वहाँ रहने पर भी साधु शुद्ध हैं, स्वाध्याय करे तो भी प्रायश्चित्त नहीं लेते।

अत. 4. क्षुद्रग्रह द्वार पूर्ण। 5. शारीरिक द्वार (गा. 1324 Pg. 3) —

गा. 1350 ★ शारीरिक असज्झाय 2 प्र. — A. मनुष्य संबंधी B. तिर्यंच संबंधी। पहले तिर्यंच संबंधी कहते हैं→ तिर्यंच संबंधी असज्झाय 3 प्र.— 1. जलज 2. स्थलचर 3. खेचर। इन प्रत्येक के द्रव्यादि 4 भेद अथवा प्रत्येक का द्रव्यादि 4 भेद से परिहार।

गा. 1351 ★ द्रव्य से पंचेंद्रिय जीव के रुधिरादि द्रव्य, क्षेत्र से 60 हाथ के अंदर हो तो असज्झाय। यहाँ परिहार — यदि 3 गली का अंतर हो तो स्वाध्याय करे अथवा। राजमार्ग का अंतर हो तो स्वाध्याय करे।

राजमार्ग = जिस मार्ग से राजा सेना सहित निकले, रथयात्रा या बहुत अश्ववाहन वि. निकले यह विधि नगर में जानना। गाँव प्रांत से व्याप्त हो तो गाँव के बाहर ही असज्झाय होती है।

गा. 1352 ★ काल से — जब से असज्झाय हो, वहाँ से 3 प्रहर तक असज्झाय अथवा 8 प्रहर। 8 प्रहर की असज्झाय पंचेंद्रिय जीव का जहाँ घात हुआ हो, उस आघात स्थान में जानना। भाव से — नंदी, अनुयोगद्वार, तंदुलवैचारिक, चंद्रावेध्यक, पोरसीमंडलादि की असज्झाय।

अत. अथवा तिर्यंच संबंधी असज्झाय इन 4 प्र. से जानना — मांस, शोणित, चर्म, अस्थि। कोई मांसग्रंथी पुरुष मांस वसति में लाए तो यह विधि —

गा. 1353-4 ★ ~~असज्झ~~ चतुर्भंगी — a मांस को 60 हाथ के अंदर धोया हो पकाया हो

(a)	✓	✓
(b)	✓	×
(c)	×	✓
(d)	×	×

प्रथम 3 भांगे में 3 प्रहर तक असज्झाय। 4 भांगे में 60 हाथ बाहर मांस धो-पकाकर वसति में लाए तो भी असज्झाय नहीं। 5 वें 6 वें भांगे में 60 हाथ के अंदर मांस धोने के बाद उसके अवयव वहाँ पड़े हों तो भी असज्झाय।

★ कौए, कुत्ते मांस के अवयव गिराते-गिराते ले जाए तब वह स्थान आकीर्ण पुद्गलव्याप्त है तथा महाकाय = पंचेंद्रिय जीव की जहाँ हत्या की हो वह आघात स्थान। क्षेत्र से ये 60 हाथ के अंदर हो तो काल से 1 अहोरात्र असज्झाय। अहोरात्र सूर्योदय तक जानना।

★ जहाँ मांस धोया था वहाँ से बड़ा पानी का प्रवाह बहता हो तो मांस के अवयव बह जाने से 3 प्रहर पहले भी वह स्वाध्याय करे।

भा. 221 ★ बिल्ली ने चूहे को दूसरी निगला हो पाँव पकड़ कर ले जाए तो कुछ आ. असज्झाय नहीं मानते।

गा. 1355 (द्वार) 1. अंतो बाहिं च भिन्नं अंगं बिंदू 2. विप्पाया 3. राजपथ चूर्ण सुद्ध 4. परव्वणं साणमादीणि।

अव. 1. द्वार की व्याख्या –

भा. 222 ★ साधु की वसति से 60 हाथ अंदर अंडा फूटे तो असज्झाय। वह अंडा वस्त्र या जमीन पर फूट सकता है। यदि वस्त्र पर फूटे तो वस्त्र 60 हाथ के बाद ले जाकर धोने से वसति शुद्ध। यदि भूमि पर फूटे तो भूमि को उखेड़कर नहीं फेंक सकते अतः उस स्थान से 60 हाथ के अंदर काल से 3 प्र.

★ प्र. अंडे का रस या खून के बिंदू के कितने प्रमाण से असज्झाय? उ. मक्खी के पैर डूबे इतना असज्झाय। बिंदू भूमि पर गिरे तो असज्झाय।

अव. 2. विप्पाया द्वार – 3. रायपह चूर्ण सुद्ध –

भा. 223 ★ जिन पशुओं को प्रसूति के समय जरा नहीं होती वैसे वल्गुलि (पक्षीविशेष) आदि जीवों की प्रसूति के बाद 3 प्रहर या सूर्योदय, जो पहले पूर्ण हो वहाँ तक असज्झाय।

जिन पशुओं में जरा होती है, उनमें जरा गिरने तक और जरा गिरना बंद होने के बाद 3 प्रहर तक असज्झाय।

★ साधु की वसति के पास से निकलते तिर्यंच के खून के बिंदु नीचे गिरे। वे यदि राजमार्ग से अंतरित हो या राजमार्ग पर ही गिरे हो तो स्वाध्याय करो। यदि अंतरित न हो या कोई छोटे रास्ते पर गिरे हो तो असज्झाय। यदि पानी के प्रवाह में बह जाए या अग्नि से जले तो शुद्ध।

अव. ५. द्वार —

भा. 224 ★ 9. कुत्ता मांस खाकर वसति के पास खड़े रहे तो असज्झाय होगी या नहीं?

उ. कुत्ता मांस खाने के बाद यदि खरड़े हुए मुख को उपाश्रय की दीवाल वि. पर लगाए या पास में मांस पसार हो तो असज्झाय। बाकी मुख खरड़ा न हो तो असज्झाय नहीं क्योंकि वह उल्टी करे या न करे वह मांस आहार रूप में परिणत होता गया है और आहार रूप परिणत मांस से असज्झाय नहीं होती, मातृ-विष्ठा में ~~स्त्री~~ की तरह।

अव. B. तिर्यंच संबंधी असज्झाय कही। A. मनुष्य संबंधी (देखें गा. 1350 पृ. 12) —

भा. 1356 ★ मनुष्य संबंधी असज्झाय ४ प्र. - चर्म, मांस, रुधिर, अस्थि। हड्डी सिवाय शेष ३ में ये परिहार- क्षेत्र से 100 हाथ, काल से अहोरात्र स्वाध्याय त्याग। वि शरीर के घाव से खून निकला हो और यदि वह पर्यायांतर को प्राप्त हो चुका हो अथवा विपरीत वर्णवाला हो तो असज्झाय नहीं। पर्यायांतर यानि पस वि., विपरीत वर्ण यानि खेर वृक्ष की लकड़ी की तरह फिके पीले वर्णवाला।

★ स्त्री को ऋतुकाल में रुधिर आए तब ३ दिन असज्झाय।

भा. 1357 ★ पुत्र जन्म होने पर ७ दिन, पुत्री होने पर ८ दिन असज्झाय क्योंकि मैथुन में यदि वीर्य अधिक हो तो पुत्र का जन्म होता है और रुधिर अधिक हो तो पुत्री का जन्म होता है। अतः पुत्री जन्म में रुधिर अधिक होने से ८ दिन।

★ स्त्री को ऋतुकाल के ३ दिन बाद भी रुधिर आए तो वह योनि रोगवाली है। इसे प्रहारुन्न कहते हैं। यहाँ अनृतुकाल का कायोत्सर्ग कर स्वाध्याय करो। (अनृतुकाल उड्डाव तथ

करेमि काउसग्गं...)

प्रश्न. हड्डी की विधि—

गा.1358 ★ दाँत गिरा हो तो ढूँढकर 100 हाथ दूर परठे। न मिले तो इत उड्डावणत्थं करेमि काउसग्गं... कर काउसग्ग करे।

स्वाध्याय

★ हड्डी जीव से जब अलग हो तब से 12वर्ष असज्झाय। (यदि 100 हाथ के अंदर हो तो)

भा.225 ★ श्मशान में जो हड्डियाँ मृतक के साथ जल गई है या पानी में बह गई, उनसे कोई असज्झाय नहीं।

★ जो अनाथ मृतक या इंधनादि का अभाव होने से सनाथ मृतक भी ऐसे ही छोड़ गए, उनसे असज्झाय।

★ चंडाल के वंश यक्ष 'हरिमिक्क' के नीचे ताजा मृतक रखा जाता है। ऐसे ही रुद्र यक्ष और चामुंडा माता वि. के नीचे भी हड्डी रखी जाती है, उनसे असज्झाय।

गा.1359 ★ अशिव - दुष्काल - बड़े युद्ध में मरे बहुत लोगों के मृतक एक जगह लाए हो और वह स्थान
1360 वसति से 100 हाथ के अंदर हो तो 12वर्ष असज्झाय। किंतु ऐसा दावानल से जल गया हो या पानी के प्रवाह में बह गए हो या गाँव-नगर बसाने वालों ने वह जगह साफ की हो तो साधु वसति के आसपास हड्डी वि. ढूँढकर 100 हाथ बाहर परठे। अशठ भाव से ढूँढने पर यदि कोई कलेवर न दिखे तो 3 दिन तक उड्डावणत्थं काउसग्ग कर स्वाध्याय करे।

भा.226 ★ छोटा गाँव हो तो मृतक जब तक गाँव के बाहर न निकले तब तक असज्झाय। बड़ा गाँव या नगर हो तो चौक या गली के बाहर मृतक ले जाए तब तक असज्झाय। ताकि लोग 'ये साधु दुःख रहित है' ऐसी निंदा न करे।

प्रश्न 9. वसति के पास से मृतक ले जाए तब पुष्प-वस्त्रादि कुछ गिरे तो असज्झाय होगी या नहीं?—

★ मृतक वसति के 100 हाथ में हो तबतक असज्झाय। 100 हाथ बाहर जाने पर सज्झाय। इसके पुष्पादि गिरने से असज्झाय नहीं होती क्योंकि शारीरिक असज्झाय 99. से होती है- मांस, चर्म

रुधिर, आर्त्ति / पुष्पादि से असज्झाय नहीं होती।

गा. 1362 ★ संयमघातादि 5 प्र. की असज्झाय कही / इन 5 सिवाय स्वाध्याय काल होता है।
★ ऐसे स्वाध्याय काल में यह सामाचारी है – प्रतिक्रमण करने के बाद काल प्रतिलेखन ~~किया होने~~ करे।
फिर कालग्रहण का समय होने पर गंडा दृष्टांत / शुद्ध काल का ग्रहण होने पर ब्राह्मण दृष्टांत।
(विस्तारार्थ आगे कहेंगे 1372–)

अत: कालग्रहण करने का कारण और विधि –

गा. 1363 ★ संयमघातकादि 5 प्र. के अस्वाध्याय के लिए साधु काल ग्रहण करे क्योंकि काल ग्रहण किए बिना 5 प्र. की असज्झाय खबर नहीं पड़ती।
यदि काल ग्रहण किए बिना स्वाध्याय करे तो चतुर्लघु प्रायश्चित्त।
★ काल प्रतिलेखना की सामाचारी – दिन की अंतिम पोरसी का चथा भाग शेष होने पर 3 काल भूमि का प्रतिलेखन करे अथवा 3 भूमि (उच्चार, प्रश्रवण, काल) का प्रतिलेखन करे।

गा. 1364 ★ उच्चार की 12 भूमि = शंका होने के बाद सहन कर सके (अहियासए) ऐसी उपाश्रय के अंदर (द्वार के पास) आसन्न, मध्य, दूर 3 / उपाश्रय के ~~अंदर (द्वार के पास)~~ बाहर 3 + 6 भूमि हुई / ऐसे ही 6 भूमि उपाश्रय के बाहर सहन न कर सके (अनहियासए) और उपाश्रय के अंदर।

गा. 1365 ऐसे ही मात्रु की 12 भूमि।
इन 24 भूमियों को जल्दबाजी किए बिना, आकुलता बिना, उपयोग पूर्वक देखे।
फिर काल ग्रहण की 3 भूमि देखे। ये भूमि जघन्य से 1–1 हाथ दूर होना चाहिए।
ये 27 भूमि देखने के बाद तुरंत सूर्यास्त हो इस तरह भूमि देखना शुरू करे। सूर्यास्त के बाद प्रतिक्रमण करे।

अत. प्रतिक्रमण विधि –

गा. 1366 ★ प्रतिक्रमण 2 प्र. – व्याघात बिना और व्याघात वाला। व्याघात न हो तो सब साधु गुरु के साथ

प्रतिक्रमण करे।

यदि गुरु श्रावक को धर्म कथा करते हो तो व्याघात होगा क्योंकि समय ज्यादा होगा।

गा.1367 ★ यदि व्याघात वाला प्रतिक्रमण हो तो शेष साधु प्रतिक्रमण मांडली में रत्नाधिक के क्रम से स्वयं के स्थान में खड़े रहकर 'करेमि भंते!...' सूत्र बोलकर काउसग्ग में खड़े-खड़े सूत्रार्थ का चिंतन करे। ★ उल्टे हाथ पर खड़े रहने वाले उसी ओर से और सीधे हाथ पर खड़े रहने वाले उसी ओर से मांडली में आए प्रदक्षिणा करके न आए। गुरु पीछे से बीच में आएँगे।

सूत्र प्रतिक्रमण मांडली – ∴ गुरु श्रीवत्सकार।

★ जब गुरु आए तब और वे 'करेमि भंते...' बोलकर अतिचार का काउसग्ग करे तब पहले से काउसग्ग में खड़े साधु भी दैवसिक अतिचार सोचना शुरू करे।

(अन्य मत – पहले साधु सूत्रार्थ के चिंतन का काउसग्ग करे। फिर गुरु आए तब मन में करेमिभंते...बोलकर अतिचार का चिंतन करे)

गा.1368 ★ जो बाल, वृद्ध, ग्लान, श्रान्त (प्रायूर्णक विहारादि से थके हुए) का काउसग्ग करने में असमर्थ हो, वह निर्जरा की अपेक्षा वाला विकथादि से रहित रहकर बैठे-बैठे स्वाध्याय करे। फिर गुरु आए तब वह भी खड़े होकर ~~सम्यक्~~ काउसग्ग करे।

गा.1369 ★ जिनेश्वरों द्वारा गणधरों को निर्दिष्ट और परंपरा से हम तक आई हुई विधि से प्रतिक्रमण कर अंत में तीन स्तुति बोले।

★ प्रतिक्रमण विधि समाप्त होने पर आगे कही जाती विधि से कालग्रहण ले।

अब. कालग्रहण की विधि छोड़कर पहले काल के भेद कहते हैं –

गा.1370 काल २५. – 1. सद्योघात – कोई व्याघात बिना काल ग्रहण हो जाए।

2. व्याघात – काल ग्रहण करने में अड़चन आए। वह अड़चन २५ की ⓐ जिस वसति में अन्यभिक्षु या कार्यिकादि भी आकर रहते हैं, उसे चंचशाला कहते हैं। ऐसी चंचशाला में आते-जाते कालप्रत्युपेक्षक साधु अन्य के साथ टकराए, गिर जाए वि.; ⓑ गुरु श्रावक को धर्मकथा करे जिससे काल निवेदन का समय निकल जाए।

गा. 1371 ऐसा व्याघात हो तब कालग्रहण करने वाले[2] साधु चंचशाला से बाहर निकले। उनके साथ एक उपाध्यायादि भी जाए। कालग्रहण करने वाले साधु सभी आदेश उनके पास माँगे। दूसरे सब साधु उपयोग पूर्वक रहे।

दांडीधर बाहर काल का पडिलेहन करने खड़ा रहे। कालग्रही और उपाध्याय अंदर आए। उपाध्याय के पास सब एक साथ प्रस्थापन करे (काल थापे)। फिर एक साधु बाहर जाए और दांडीधर अंदर आए। वह भी उपाध्याय के पास काल प्रस्थापन करे। फिर सब स्वाध्याय करे। (पूरी विधि विस्तार से कहते हैं) [आपृच्छा, संदिसाना, निवेदन]

प्रत. निर्व्याघात काल ग्रहण की विधि — (व्याघात काल ग्रहण में आदेश उपाध्याय के पास और निर्व्याघात में गुरु के पास माँगना)

गा. 1372 निर्व्याघात होने पर दोनों (कालग्रही-दांडीधर) गुरु को पूछे - काल ग्रहण करूं? अनुज्ञा आपृच्छा लेकर व गुरु वंदन कर दंड लेकर उपयोग पूर्वक आवस्सही आसज्ज करके प्रमार्जना करते हुए बाहर जाएँ। यदि बीच में टकराए, गिरे या वस्त्रादि कुछ उड़े या वंदनादि में कुछ विपरीत करे अथवा वंदन स्वीकारने में कुछ गुरु भूल करे तो काल का व्याघात।

कालभूमि में विधि - इंद्रियों द्वारा उपयुक्त होकर काल देखे (यदि पांचों इंद्रिय के विषय अनिष्ट हो अर्थात् भेद डाले वि. अशुभ शब्द सुनाए, अशुभ गंधादि हो तो काल ग्रहण न करे)

चारों दिशा स्पष्ट दिखती हो, चौमासे में तिवाय तीन तारे दिखते हो तो काल ग्रहण करे।

यदि दिग्मोह हो, तारे न दिखते हो, वारिश गिरती हो या कोई असज्झाय हो तो काल वध होता है।

गा. 1373 गुरु के पास से कालभूमि जाते हुए उन्हें छींक या उंबर स्पर्श हो तो कालवध।

इत्यादि कारणों से अव्याहत के दोनों कालभूमि में संडासे वि. विधिपूर्वक प्रमार्जकर बैठे-बैठे या खड़े-खड़े 1-1 जन दो दिशा में देखता हुआ रहे। (काल प्रतिलेखन=काल मांडला)

गा. 1374 वहाँ (कालभूमि में) स्वाध्याय न करते हुए, मात्र कालवेला को देखते हुए रहे। गर्मी में ऽ, ठंडी में ऽ, वर्षा में ऽ कनक (ग्रहविशेष) दिखे तो काल ग्रहण न ले।

ऐसे व्याघात बिना कालवेला को प्राप्त हो तो दांडीधर अंदर आकर साधुओं को कहे -

कालवेला प्रतिपूर्ण हुई, आवज्ज मत करना। यहाँ गंडग दृष्टांत होता है।

गा. 1375 गंडक = गाँव में घोषणा करने वाला। गाँव में गंडक ने कोई घोषणा की हो। बहुत लोगों ने सुनी हो और कुछ ने न सुनी तो न सुनने वाले को दंड। ऐसे ही बहुत ने न सुनी और कुछ ने सुनी तो गंडक को दंड।

ऐसे ही यहाँ दांडीधर ने सबको कहा- कालवेला हुई है, तुम सब गर्जनादि (हूँ या नहीं) सुनने में उपयुक्त हो जाओ। ~~सब~~ बहुत ने सुनी और कुछ ने न सुनी तो न सुनने वाले को दंड; यदि कुछ ने सुनी बहुत ने न सुनी तो दांडीधर को दंड। (यहाँ दंड = सूत्रार्थ की अनुज्ञा।)

दंडधारी वापस बाहर जाए। कालग्रही खड़ा हो।

अब कालग्रही के गुण-

गा. 1376 ★

	प्रियधर्मी	दृढधर्मी	
①	✓	✓	→ पहले भांगे वाला कालग्रही।
②	✓	×	
③	×	✓	
④	×	×	संविग्न यानि हमेशा ~~संसस~~ संसार से उद्विग्न चित्त वाला।

पापभीरू = पाप से डरने वाला। खेदज्ञ = कालग्रहण की विधि जानने वाला।

अब दोनों काल का पडिलेहन करते हुए ऐसे काल की तुलना करे (कालवेला के लक्षण)

गा. 1377 ★ संध्या १ होने पर कालग्रहण शुरू करे और संध्या पूरी होने तक कालग्रहण भी पूरा हो ऐसे शुरू करो अथवा पश्चिम सिवाय उत्तरादि ३ दिशा में संध्या हो तब कालग्रहण शुरू करे। फिर संध्या पूर्ण होने पर भी दोष नहीं है।

गा. 1378 ★ ऐसे काल की तुलना कर संविसावने के लिए कालग्रही गुरु के पास उपयोग पूर्वक जाए। यदि पहले ~~आप~~ आपृच्छा किए बिना काल ग्रहण करने गए हो तो कालवध। यदि उपाश्रय में प्रवेश करते हुए ठकारा संदिसह गिरे, वांदणा दि. में भूल करे, वांदणा के आवर्त या २५ आवश्यक आदि में शंका हो, अमनोज्ञ इंद्रिय विषय प्राप्त हो तो कालवध।

गा. 1379 ★ प्रवेशते हुए उवार निसीहि करे। फिर नमो खमासमणाणं बोलकर गुरु को नमस्कार करे। इरियावही, ऽ श्वास का काउस्सग्ग, पारने के बाद 'नमो अरिहंताणं' की जगह नवकार बोले, वांदणा, आदेश

मांगे - इच्छाकारेण संदिसह (अनुज्ञा दो) ३ पाउसिय (अदोषिक) काल ग्रहण करूँ? गुरु-ग्रहण करो। ऐसे कालग्रही संदिसह कर आए तब दांडीधर काल का प्रतिलेखन करे। (काल मांडला करे?)

गा. 1380 ★ फिर कालग्रही उत्तराभिमुख खड़ा रहे। दांडीधर उसके उल्टे हाथ की ओर पूर्वाभिमुख खड़ा रहे। कालग्रही काल ग्रहण करने के लिए ४ श्वास प्रमाण काउसग्ग करे। अन्य सभी साधु ८ श्वास काउसग्ग करे। काउसग्ग पारकर लोगस्स, कुमुपुष्पिका और श्रामण्यपूर्विका (चतुर्विंशतिस्तव)
अध्ययन मन में अस्खलित बोले।
फिर पूर्व दिशा में पुनः ये तीन अध्ययन, फिर दक्षिण, फिर पश्चिम में।

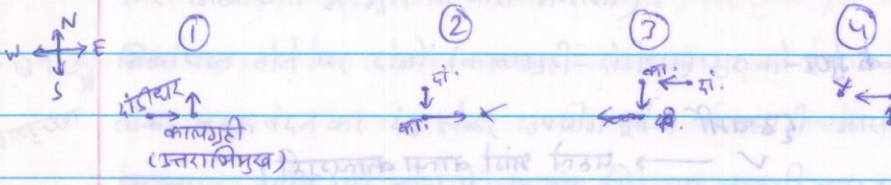

अत. कालग्रहण लेते हुए को ये व्याघात संभव है -

गा. 1381 ★ पानी के छींटें उड़े (शरीर पर), शरीर या आस पास खून के छींटे गिरे, छींक सुनाए, अध्ययन बोलते हुए अन्य भाव आए हों (उपयोग न रहा हो), स्वप्न के गच्छ में ३ साधु को गर्जना-विद्युत् वि. की शंका होवे तो काल वध।

गा. 1382 ★ कालग्रही दिशा भूल गया हो (उत्तर की जगह पूर्वाभिमुख रहा हो वि.), अध्ययन भूला हो (लोगस्स की जगह कुमुपुष्पिका बोला हो वि.)। मन में बोलने की जगह स्पष्ट बोला हो या अस्पष्ट उच्चार किया हो, अनिष्ट इंद्रिय विषय प्राप्त हुए हो, अथवा इष्ट विषयों में राग किया हो तो ~~अ~~ काल वध।

अत. ऐसे शुद्ध कालग्रहण कर गुरु के पास निवेदन करने जाने की विधि -

गा. 1383 जो विधि बाहर जाने की कही थी, वही अंदर आने में जानना।
यह गाथा भद्रबाहुस्वामी द्वारा रचित है। इसमें अतिदेश करने पर भी सिंहसेन उपाध्याय

इस गाथा की व्याख्या करते हैं -

गा.1 (प्रक्षिप्त) यदि आते-जाते निसीहि - आवस्सही न करे या आसज्ज न करे, कालभूमि से गुरु के पास आते हुए बीच में बिल्ली वि. आड़ करे, छींक सुनाए, अनिष्ट इंद्रिय विषय हो, प्रमार्जना न करे तो काल वध।

गा.2 (प्रक्षिप्त) सबसे पहले गुरु को पूछकर कालभूमि जाने पर (देखें गा.1372 Pg. 18) यदि गाय बैठी हो या कीड़ी वि. हो तो कालग्रहण न लें। काल प्रतिलेखन करते, ग्रहण करते, या निवेदन के लिए जाते हुए वानरहास्यादि सुनाए तो कालवध। वानरहास्य= आकाश में विकृत मुख कर अंतर वानर जैसा हँसे।

अव. गुरु को काल निवेदन करने की विधि -

गा.1384 इरियावहिया (यदि गुरु से 1 हाथ दूर ही काल ग्रहण किया हो तो भी इरियावहिया करे), 5 श्वास का काउस्सग्ग, पारकर नवकार, वंदन कर काल निवेदन करे - ~~गुरु~~ पादोषिक काल शुद्ध है। दांडीधर को दौड़कर सब एकसाथ स्वाध्याय की प्रस्थापना करे (अर्थात् स्वाध्याय करे, सज्झाय पठाए।)

अव. एकसाथ क्यों सज्झाय पठाए -

गा.1385 इसमें ब्राह्मण दृष्टांत - एक नगर में राजा को ब्राह्मणों को दान देने की इच्छा हुई x उसने घोषणा कराई x जो नगर में थे उन ब्राह्मण को दान मिला x जो बाहर गए थे उन्हें नहीं मिला * जब कालका निवेदन करे तब जिसने एक साथ स्वाध्याय का प्रस्थापन किया (सज्झाय पठाई) उन्हें स्वाध्याय करने की अनुज्ञा देते हैं x जो विकथादि प्रमाद में गिरे उन्हें काल नहीं देते।

सज्झाय पठाकर कोई एक साधु बाहर जाता है, तब दांडीधर अंदर आता है।

गा.1386 वह आकर स्वाध्याय का प्रस्थापन करता है, फिर वंदन कर सबको पूछता है कि आपमें से किसी ने कुछ देखा? * साधु भी जो दिखा हो, वह कहे। यदि साधु कहे कि कुछ नहीं देखा तो काल शुद्ध।

★ यदि एक साधु ने भी स्पष्ट कुछ देखा या सुना हो तो काल अशुद्ध, स्वाध्याय न करे।

गा. 1387 ★ यदि शंका हो तो 1-2 साधु को शंका हो तो स्वाध्याय करे। 3 साधु को एक जैसी (बिजली कि. की) शंका हो तो स्वाध्याय न करे। यदि 3 को अलग-अलग शंका हो तो स्वाध्याय करे।

★ ऐसी शंका स्वगच्छ में हो तो परगच्छ के साधु को पूछने न जाए, उनके कहने से अस्वाध्याय न करे क्योंकि वहाँ कुछ अशुद्धी होने से देवी वहाँ अवज्ञा कर रही हो, यहाँ न कर रही हो ऐसा संभव है।

अब [4 कालग्रहण होते हैं - पाउसिय (प्रादोषिक), अड्धरत्ति (अर्धरात्रिक), वेरत्ति (वैरात्रिक), वाघाई पभाई (प्राभातिक)। उपर्युक्त विधि प्रादोषिक (शाम) के कालग्रहण की कही] चारों काल में अंतर -

गा. 1388 ★ प्रादोषिक में दांडीधर सिवाय सभी साधु में सज्झाय पढ़ाए, बाकी तीन काल में साथ या अलग-अलग पढ़ाए।

गा. 1389-90 ★ ग्रीष्म में 3, ठंडी में 5, वर्षा में 7 कनक दिखने पर कालवध होता है। 3 कनक जल्दी होने से वह उत्कृष्ट कालवध है। 7 कनक देर से होने से वह जघन्य काल वध। साधुओं को पाँचों इंद्रियों के उपयोग में अच्छे से उपयुक्त होकर सभी काल ग्रहण करना चाहिए (कनकादि उपयुक्त होकर देखे)।

एक ही उल्का से कालवध।

कनक = पतली रेखा वाला, प्रकाश बिना का तारा दूरते हुए दिखना।

उल्का = रेखा वाला या रेखा बिना प्रकाश वाला पिंड। ~~उल्क~~

गा. 1391 ★ वर्षाकाल में जहाँ खड़े-खड़े 3 दिशा दिखे वहाँ से प्राभातिक काल ग्रहण करे। शेष 3 काल जहाँ से चारों दिशा दिखे, वहाँ से ग्रहण करे।

गा. 1392 ★ ऋतुबद्ध काल में प्रादोषिक (शामका), अर्धरात्रिक (मध्यरात का) और वैरात्रि (जल्दी सुबह का), ये 3 काल जघन्य से 3 तारे दिखने पर ग्रहण करे। 3 से कम तारे दिखने

पर ग्रहण न करे किंतु पभाई काल एक भी तारा न दिखने पर भी ग्रहण न करे।

★ वर्षाकाल में बादल वि. से एक भी तारा न दिखे तो भी चारों काल ग्रहण करे।

गा.1393 ★ गच्छ के उपकार के लिए पभाई काल के लिए अपवाद - उपाश्रय के बाहर कालग्राही के खड़े रहने की जगह न हो तो उपाश्रय के अंदर खड़े-खड़े काल ग्रहण करे।

- अंदर भी खड़े रहने की जगह न हो तो अंदर ही बैठे-बैठे काल ग्रहण करे। तब अन्य एक साधु बाहर खड़े रहकर काल का ध्यान रखे।

- बाहर जगह होने पर भी बारिश हो तो अंदर ही काल ग्रहण लें। प्रतिचारक भी अंदर से ही काल देखे। (प्रतिचारक)

शेष कालत्रय के लिए बाहर जगह न हो या बारिश हो तो ग्रहण न करे अथवा परंपरा में जो सामाचारी हो, वह जाने।

अव. किस कालग्रहण में किस दिशाभिमुख रहना —

गा.1394 ★ प्रादोषिक, अहरति नियमा उत्तराभिमुख।

विरति (वेरत्ति) पूर्व या उत्तराभिमुख।

पभाई नियमा पूर्वाभिमुख।

अव. कितने कालग्रहण करना? —

गा.1395 ★ उत्सर्ग से — उत्कृष्ट 4 जघन्य 3

अपवाद से (अशठता से ग्रहण करे) 2 या 1।

कालग्रहण रोज लेना चाहिए किंतु कारण से अशठता पूर्वक न लें या कालवध हो तो कोई प्रायश्चित्त नहीं।

पूर्व. 4 कालग्रहण की विधि-

गा.1396 प्रादोषिक काल ग्रहण कर सूत्रपोरसी कर साधु सो जाए। अर्थपोरसी और उत्कालिक सूत्र

पढ़ने वाले साधु अर्द्धरात्रि तक जागे। अर्द्धरात्रि पूर्ण होने के बाद जागते हुए साधु अर्द्धरति काल ग्रहण कर सो जाए। गुरु जागकर तीसरे प्रहर में स्वाध्याय करे। अंतिम प्रहर में सभी जागे और वैरात्ति काल ग्रहण कर स्वाध्याय करे, यहाँ गुरु सो जाए। पभाई कालग्रहण करने का समय हो तब जो पभाई काल ग्रहण करने वाले साधु हैं वे काल का प्रतिक्रमण कर (अंतिम पारली में विरति काय पडिक्कमुं। विरति काय पडिक्कमावणी काउस्सग्ग करूं? आदेश माँगकर) पभाई काल ग्रहण करे। शेष साधु कालवेला होने पर पभाई काल का प्रतिक्रमण करे (सूर्योदय पहले की प्रशस्त काल वेला)

[यहाँ पभाई काल का प्रतिक्रमण करने का लिखा है किंतु विरति काल का प्रतिक्रमण होना चाहिए क्योंकि नियम ऐसा है कि जिस काल का प्रतिक्रमण करते हैं उसका स्वाध्याय पूर्ण होता है और पभाई काल का प्रतिक्रमण तो शाम को होता है। अतः यहाँ 'विरति' काल होना चाहिए। अथवा इस पंक्ति का ऐसा अर्थ करें - पभाई काल की वेला में शेष साधु विरति काल का प्रतिक्रमण करे]

फिर सब आवश्यक प्रतिक्रमण करें। ऐसे प काल ग्रहण होते हैं।

प्र. 3, 2, 1 काल ग्रहण कैसे? —

गा. 1397-8 ★ वैरात्ति, अहरति अथवा वाघाई सिवाय 3 काल ग्रहण करे।

☆ वाघाई - अहरत्ति, वाघाई - वैरत्ति, वाघाई - पभाई, अहरत्ति - वैरत्ति, अहरत्ति - पभाई अथवा वैरत्ति - पभाई 2 काल ग्रहण करे।

यदि वाघाई और पभाई ले तो वाघाई काल शुद्ध लेने के बाद पूरी रात जागकर उपयोग पूर्वक स्वाध्याय करे।

★ जब 1 काल ग्रहण करना हो तब कोई भी 1 काल ग्रहण करे।

☆ उत्सर्ग से प काल ग्रहण लेना। वाघाई शुद्ध न हो तो अहरात्ति लेकर स्वाध्याय करे। अहरत्ति शुद्ध न हो तो वैरात्ति लेकर स्वाध्याय करे। दिन में स्वाध्याय करने पभाई काल तो ले ही।

वाघाई काल शुद्ध हो तो जागकर पूरी रात पढ़े। वाघाई शुद्ध न हो तो अहरत्ति काल से

शेष रात्रि स्वाध्याय करे (अर्थात् विरति के समय विरति, काल लिए बिना भी स्वाध्याय चालू रखे)।
ऐसे ही वेरत्ति शुद्ध हो; बाद में सोए न हो तो पभाई काल असुद्ध होने पर भी पहले उद्देश किए हुए सूत्र पढ़े (नया उद्देश न करे)।

★ चार काल ग्रहण न करने के कारण – अशिवादि के कारण अथवा वाघाई, वि. काल शुद्ध न हो, अथवा वाघाई में अद्धरात्ति की स्थापना कर जागकर स्वाध्याय करने के लिए अद्धरत्ति ग्रहण न करे। इत्यादि।

प्रश्न. पभाई काल ग्रहण की विधि –

गा.1399 ★ पभाई काल में 2 विधि – ग्रहण विधि, प्रस्थापन विधि।

प्रश्न. ग्रहण विधि –

गा.2287 ★ 9 दिन में साधुओं देश कथा न करे और प्रेक्षावी साधुओं के स्वाध्याय का व्याघात न हो इसलिए इस प्रकार सभी साधुओं के उपकार के लिए पभाई काल 9 वार लेने की छूट दी है। अतः 9 वार काल ग्रहण कर सके, उतना समय बाकी रहे तब पभाई काल ग्रही विरति (वेरत्ति) काल का प्रतिक्रमण करे (2 आदेश मांगे)। शेष साधु इस समय उपयुक्त रहें, विरति काल का प्रतिक्रमण करे या न करे।

★ एक साधु वेरत्ति काल का प्रतिक्रमण अवश्य न करे जिससे पभाई काल शुद्ध न आए तो वह वेरत्ति में पभाई काल की स्थापना करे। पभाई काल शुद्ध होने पर जब सब साधु वेरत्ति का प्रतिक्रमण कर ले तब यह भी गुरु को पभाई काल का निवेदन कर, सूर्योदय पहले वेरत्ति का प्रतिक्रमण कर ले।

★ पभाई काल 9 वार असुद्ध हो तो अस्वाध्याय निश्चित जानकर स्वाध्याय न करे।

प्रश्न. 9 वार पभाई काल ग्रहण करने की विधि –

गा.228 ★ पभाई काल लेते इर छींक, रोना वि. सुनाए तो काल असुद्ध। पुनः दूसरी वार ले। ऐसे। साधु 3 वार ले।
दूसरा साधु दूसरी स्थंडिल भूमि में 3 वार ले। वहाँ भी आए तो तीसरा साधु तीसरी भूमि

में 3 बार लें।

★ यदि 3 साधु न हो तो 2 साधु, 2 न हो तो 1 साधु भी 3 बार काल ग्रहण करे।
यदि 3 स्थंडिल भूमि न हो तो 2 में, 2 न हो तो 1 भूमि में भी 3 बार काल ग्रहण करे।

अव. गा. 1399 में 'परवणे खरमाई' और 'पावासिय' पर की व्याख्या → प्र. यदि अनिष्ट रुदन से काल नष्ट होता है तो गधे के रुदन से 12 साल तक काल नष्ट होना चाहिए।

भा. 229 ★ उ. यदि मनुष्य या तिर्यंच के अनिष्ट स्वर (रोने वि. की आवाज) सुनाए तो कालवध।

★ प्रोषितपतिका स्त्री रोज रोती हो तो उसके रोने के समय के पहले ही पभाई काल ग्रहण करे या दिन में उसे जाकर समझाए। यदि समझाने पर भी न माने तो उड्डावणि काउसग्ग करे।

भा. 230 ★ अत्यंत प्रयत्न द्वारा (करुण विलाप) रोना विस्वर कहा जाता है। इससे कालवध।
प्रयत्नशब्द से रोने द्वारा कालवध नहीं होता।

★ जब तक बच्चा बोलता नहीं है तब तक उसका रुदन अव्यक्त होता है। थोड़े भी अव्यक्त रुदन से ~~असज्झाय~~ कालवध।

★ जोर-जोर से छाती कूट कर रोने से कालवध।

अव. पभाई ग्रहण विधि कही (गा. 1393 पृ. 25)। अब पभाई स्वाध्याय प्रस्थापन (सज्झाय पढ़ाने) विधि —

★ सूर्योदय होने के बाद दिशावलोक कर सज्झाए पढ़ाए। यदि छींक वि. से सज्झाय जाए तो दूसरा साधु दिशावलोक कर सज्झाय पढ़ाए। ऐसे ही तीसरी बार भी।

अव. दिशावलोक करने का कारण —

गा. 1400 ★ कौए वि. द्वारा त्यजा गया मांस वि. या कोहरा हो तो सज्झाय जाती है।

★ किसी कारण से 1 स्थान में 3 बार ~~प्रस्थापन~~ सज्झाय जाए तो 100 हाथ के बाहर अन्य जगह

सज्झाय पठाए। वहाँ भी 3 बार में शुद्ध न हो तो 100 हाथ के बाहर अन्य जगह सज्झाय पठाए। यहाँ यदि शुद्ध हो तो स्वाध्याय करे। यहाँ भी 3 बार में शुद्ध न हो (कुल 9 बार) तो प्रथम पोरसी में स्वाध्याय न करे।

गा.1401 ★ सज्झाय पठाने में लोगस्स, दशवै. के 2 अध्ययन (कुल 3 अध्ययन) के बाद तीसरे अध्ययन की 1 गाथा बोले तब सज्झाय पूरी होती है।

गा.1402 ★ स्वाध्याय करते हुए खून वि. दिखे तो वहाँ स्वाध्याय न करे या परा डालकर स्वाध्याय करे।

★ " " " मूत्र-पुरीष-खून-कलेवरादि का या अन्य कोई भी अशुभ गंध आए तो वहाँ स्वाध्याय न करे।

★ जहाँ कोई किसी को मारता हो, बांधता हो वि. देखकर वहाँ स्वाध्याय न करे।

★ ये सब विधि निर्व्याघात काल में जानना। व्याघात काल में भी यह विधि, मात्र गंडक और मरुक का दृष्टांत नहीं कहना। (देखें गा.1370 Pg.17, गा.1375 Pg.19, गा.1385 Pg.21)

अब असज्झाय में स्वाध्याय करने का नुकसान –

गा.1403 इन 5 प्र. की असज्झाय में से किसी एक असज्झाय में जो स्वाध्याय करता है, उसे आज्ञा भंग, अनवस्था, मिथ्यात्व और विराधना दोष लगते हैं।

अब परसमुत्थ असज्झाय द्वार पूर्ण (देखें गा.1323 Pg.3)। I. आत्मसमुत्थ असज्झाय –

गा.1404 आत्मसमुत्थ असज्झाय एक प्र. की या दो प्र. की होती है। 1 प्र. की साधुओं को, 2 प्र. की साध्वियों को।

★ साधुओं को 1 प्र. की आत्मसमुत्थ असज्झाय – व्रण यानि घाव से।

साध्वियों को 2 प्र. " " " – व्रण और ऋतुकाल में।

गा.1405 ★ व्रण संबंधी विधि – 100 हाथ के बाहर घाव को धोकर खून न निकले ऐसा करे। फिर भी यदि खून निकले तो 3 पट्टी बांधकर वाचना दे या पढ़े। 3 पट्टी बांधने पर भी यदि खून

निकले तो जयणा करे। (3 पट्टी बांधने और जयणा की विधि गा.1406 में-)

गा. 1406 ★ घाव को 100 हाथ के बाहर धोकर खून न निकले ऐसे पट्टी बांधकर वाचना दे या पढ़े। फिर भी खून निकले, पट्टी गीली हो जाए तो राख डालकर पुनः दूसरी पट्टी बांधे। फिर भी पट्टी गीली हो तो राख डालकर तीसरी पट्टी बांधे। फिर भी गीली हो तो 100 हाथ बाहर जाकर व्रण और पट्टी को धोकर पुनः पट्टी बांधे अथवा अन्यत्र जाकर पढ़े। (यह जयणा कही)

गा. 1407 ★ साध्वीजी को घाव या ऋतुकाल में ऐसे ही पट्टी बांधना, उत्कृष्ट से 7 पट्टी बांधना। 7 पट्टी के बाद भी खून निकले तो 100 हाथ बाहर घाव और पट्टी धोकर पुनः बांधे, बांधकर वाचना दे या पढ़े, अथवा अन्यत्र जाकर पढ़े।

प्रश्न. असज्झाय में स्वाध्याय करने के दोष-

गा. 1408 आत्मसमुत्थ इन असज्झायों में से किसी में भी जो अजयणा से स्वाध्याय करता है, उसे आज्ञाभंगादि दोष लगेंगे।

केवल आज्ञाभंगादि दोष नहीं, दूसरे भी दोष-

गा. 1409 1. श्रुतज्ञान की अभक्ति = श्रुतज्ञान की उचित विधि न होने से अभक्ति होती है अथवा श्रुत में भक्ति से भी असज्झाय में स्वाध्याय न करे।

2. लोकविरुद्ध = लोक और धर्म विरुद्ध भी करना नहीं चाहिए।

3. प्रमत्तछलना = अविधि से स्वाध्याय करने वाला प्रमत्त होता है। प्रमत्त साधु को देव छल सकता है जैसे विद्या सिद्ध करने के साधन की अविधि के कारण विद्या सिद्ध नहीं होती, वैसे यहाँ कर्म निर्जरा भी नहीं होती।

4. धार्मिता = श्रुतधर्म का यह धर्म है। यदि असज्झाय में स्वाध्याय करो तो ज्ञानाचार की विराधना होती है।

प्रश्न. प्र. शरीर से बाहर गिरे दाँत, मांस, खून वि से असज्झाय होती है तो देह भी दाँत, हड्डी, खून, मांस से ही बना है। ऐसे देह से स्वाध्याय कैसे करें?

गा.1410 उ. शरीर ऐसा ही है किंतु जो खून वि. शरीर से अलग हुए हैं, वे वर्ज्य हैं। जो शरीर में ही हैं, वे वर्ज्य नहीं है। लोक में ऐसा देखा जाता है, लोकोत्तर में भी ऐसा ही है।

गा.1411 शरीर में मल-मूत्र-पुरीषादि हैं तो भी देव की पूजा लोक में की जाती है। वे ही मलादि शरीर के बाहर लगे हो तो पूजा नहीं की जाती।

गा.1412 जो प्रतिमा देवाधिष्ठित है, इस प्रतिमा की कोई जानबूझकर आशातना करे तो अधिष्ठायक देव उसे नहीं छोड़ता। उसे पागल करता है, रोग करता है या मार देता है। ऐसे ही जो असज्झाय में स्वाध्याय करता है उसे ज्ञानाचार की विराधना से कर्मबंध होता है (परलोक पक्ष), इसलोक में देव छल करता है। आज्ञाभंगादि होतेही हैं।

गा.1413 1414 पू. कोई इन अप्रशस्त कारणों से असज्झाय में स्वाध्याय कर सकता है -

1. राग से - स्वाध्याय करने वाले को लोग 'गणि', 'वाचक' कहते हैं तो मैं भी स्वाध्याय करूँ।
2. द्वेष से - लोग इसे क्यों गणि-वाचक कहते हैं, मैं भी स्वाध्याय करूँ जिससे लोग मुझे भी गणि-वाचक कहे। मैं इसका प्रतिपक्षी बनूँ।
3. मोह से - यदि शरीर के अवयव से असज्झाय होती है तो पूरा शरीर भी अशुचिमय ही है, ऐसे तर्कों से असज्झाय की श्रद्धा न करे।

गा.1415 उ. ऐसे स्वाध्याय करने से ये दोष - पागल हो, लंबे समय का रोग हो, प्राणघाती रोग हो, धर्म भ्रष्ट हो, चारित्र भ्रष्ट हो। ये इहलोक के फल कहे। परलोक में विद्याएँ फल नहीं देती और दीर्घ संसार प्राप्त होता है।

गा.1416 श्रुत की आशातना से नियमा 8 कर्म बँधते हैं। ह्रस्वस्थिति वाले कर्मों की स्थिति दीर्घ होती है, मंद रस वाले का तीव्र रस होता है, अल्प प्रदेश वाले कर्म बहुत प्रदेश वाला होता है। ऐसे दीर्घ संसार होता है। अथवा ज्ञानाचार की विराधना से दर्शन विराधना, ज्ञानदर्शन-विराधना से चारित्र विराधना, 3 विराधना से मोक्ष नहीं होता। अतः दीर्घ संसार।

गा.1417 संयम-तप युक्त, निर्ग्रंथ, महर्षि ऐसे आपको वीरपुरुषों द्वारा प्रज्ञप्त अस्वाध्यायिक निर्युक्ति कही।

गा.1418 असज्झाइयनिज्जुत्तिं जुंजंता चरणकरणमाउत्ता। साहू खवंतिकम्मं अणेगभवसंचियमणंतं॥

श्री अस्वाध्यायिकनिर्युक्तिः समाप्ता॥

सूत्र तथा सज्झाए न सज्झाइयं तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

तथा स्वाध्याय काल में स्वाध्याय न किया। इस प्रकार आशातना से जो अतिचार किया, वह मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

टीप्पणक * प्र. 33 आशातना तक ही प्रतिक्रमण स्थान हैं ~~क्या~~ अन्य भी हैं? उ. ये तो मात्र उपलक्षण बताने के लिए सूत्र में निबद्ध प्रतिक्रमण स्थान ही कहे हैं किंतु इतने ही नहीं हैं। अन्य भी 34 वि. से अनंत स्थान तक अर्थ से सूचित हैं। आमोह न हो इसलिए सामान्य से मैं कहता हूँ।

33 आशातना स्थानों से ऊपर 34 तीर्थंकर के वचनादि अतिशय प्रतिक्रमणीय हैं, ये प्रसिद्ध ही हैं। 35 वचनातिशय कहना, विशिष्ट सम्प्रदाय के अभाव से इनके स्वरूप का वर्णन नहीं किया जाता। 36 उत्तराध्ययन कहना।

(गाथार्द्ध से 100 स्थान तक का अतिदेश-) इस प्रकार समवायांग में जैसे कहे हैं, वैसे ही 37 वि. से 100 स्थान तक कहना। (उत्तरार्द्ध से 100 स्थानों से ऊपर भी प्रतिक्रमण स्थानों के देखते हुए बहुत ज्यादा होने से उन्हें कहने का सामर्थ्य न देखते हुए अतिदेश -) इस प्रकार संख्य-असंख्य-अनंत परमाणु-स्कंध-जीवराशि वि. स्थानों से संयम या असंयम के संबंधी होने से प्रतिषिद्ध आचरणादि रूप जो अतिचार हुआ उसका प्रतिक्रमण होता है। ये सभी संख्य-असंख्य-अनंत स्थान 33 आशातना रूप स्थानों में नियमा अन्तर्भाव अन्तर्गत होते ही हैं। ~~इसलिए~~ तथा हमारे मत से 33 आशातना पदों में अन्तर्भाव होने से, वे आशातना पद और अन्य भी 'दोहिं बंधणेहिं' वि. द्विकसंयोगादि जो ये सभी भेद हैं (अर्थात्

2 से लेकर अनंत तक के सभी भेद) एकविध असंयम की ही पर्याय हैं, उसके ही भेद हैं।
इस प्रकार अतिचार की विशुद्धि करके ऋषभादि को नमस्कार करते हैं।

हरिभद्रीय

वृत्ति प्रव. पूर्व की अशुभसेवना से अटके हुए पुनः न करने के लिए प्रतिक्रमण करते हुए नमस्कार पूर्वक प्रतिक्रमण करते हुए कहते हैं –

सूत्र नमो चउवीसाए तित्थगराणं उसभाइमहावीरपज्जवसाणाणं।
ऋषभादि महावीर तक के 24 तीर्थंकरों को नमस्कार हो।

★ प्राकृत में चतुर्थी के अर्थ में षष्ठी होती है। कहा गया है –
बहुवयणेण दुवयणं छट्ठिविभत्तीए भन्नइ चउत्थी। जह हत्था तह पाया नमो इत्थु देवाहिदेवाणं॥
बहुवचन से द्विवचन और षष्ठी विभक्ति से चतुर्थी कही जाती है। 'जह हत्थ तह पाया' में हाथ और पैर द्विवचन होने पर भी बहुवचन है और 'देवाहिदेवाणं' में षष्ठी है।

प्रव. नमस्कार करके प्रस्तुत प्रवचन के गुणों का वर्णन करने के लिए कहते हैं –

सूत्र इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं नेआउयं संसुद्धं सल्लगत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं अवितहमविसंधिं सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं इत्थं ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति

★ इदमेव = यही सामायिक से लेकर पच्चक्खान तक (षडावश्यक) अथवा द्वादशांग
निर्ग्रंथ = बाह्य-अभ्यंतर परिग्रह रहित साधु, उनका तेषां इदं नैर्ग्रन्थ्यं।
प्रावचन = प्रकर्ष से अभिविधि से जीवादि जिसमें कहे जाते हैं।
सत्य = सतां हितं, सत् के लिए हितकर, सत् = मुनि, गुण या पदार्थ।
→ हर दर्शन भी उस-उस नय से सत्य है इसलिए कहते हैं –
अनुत्तर = समस्त वस्तु यथावस्थित प्रतिपादन करने से उत्तम।
→ यों दर्शन ऐसा है तो इसके जैसा दूसरा भी कोई हो सकता है ना? –
केवलिय = अद्वितीय, इसके जैसा दूसरा कोई नहीं है।

→ ऐसा अन्य कोई नहीं है कि यह मोक्ष में ले जाने वाले गुणों से रहित हो तो? –
प्रतिपूर्ण = मोक्ष साधक गुणों से भरा हुआ।
→ गुणों से भरा हुआ भी आत्मंभरी हो, दूसरे को मोक्ष न ले जा सकता हो? –
नैयायिक = मोक्ष में ले जाने के स्वभाव वाला (नयनशीलं)।
→ नैयायिक भी प्रवचन शुद्ध न होने से जल्दी मोक्ष में ले जाने वाला न हो? –
संशुद्ध = समस्तता से शुद्ध यानि एकांत कलंक रहित।
→ ऐसा प्रवचन भी कभी तथास्वभाव से संसार के कारणों को छेदने में समर्थ न हो? –
शल्यकर्त्तन = भव के कारण रूप मायादि शल्यों को छेदने वाला।
→ अन्य मतों के निषेध के लिए –
सिद्धि मार्ग = सिद्धि यानि हितार्थप्राप्ति का मार्ग।
मुक्ति मार्ग = मुक्ति यानि अहितार्थ कर्म की विच्युति, उसका मार्ग।
यह प्रवचन केवलज्ञानादि हितार्थ की प्राप्ति से और अहित कर्म की विच्युति से मोक्ष प्रापक है। इस पद से केवलज्ञानादि से रहित और कर्म सहित मुक्त होते हैं ऐसे परमत का खंडन किया।
→ अन्य भी गलत मान्यताओं का खंडन करने कहते हैं –
निर्याणमार्ग = या धातु में कर्म अर्थ में अनट् प्रत्यय – यान्ति तद् इति। जहाँ जीव जाए।
निरुपम यान = निर्याण यानि ईषत्प्राग्भार नामक मोक्ष स्थान। उसका मार्ग।
निर्याण मार्ग ⇒ विशिष्ट निर्वाण की प्राप्ति का कारण। इससे अनियत सिद्धि क्षेत्र का प्रतिपादन करने वाले अन्य दर्शन का निरास कहा।
→ निर्वाण मार्ग = निर्वाण यानि सकल कर्म के क्षय से उत्पन्न आत्यंतिक सुख। उसका मार्ग। अर्थात् परम सुख का कारण। इससे मुक्तात्मा सुख-दुःख रहित होते हैं, ऐसे प्रतिपादन में तत्पर दर्शन का निरास कहा।
→ उपसंहार करते हैं – यह प्रवचन
अवितथ = सत्य है।

अविसंधि = अव्यवच्छिन्न है, क्योंकि पश्चिम महाविदेहादि में हमेशा होता है।
सर्वदुःखप्रहीणमार्ग = सर्व दुःख से हीन ऐसे मोक्ष का मार्ग।
→ परार्थ करने से यह प्रवचन चिंतामणि है, ऐसा कहते हैं –
इत्थं ठिया जीवा = इस प्रवचन में स्थित जीव
सिध्यन्ति = अणिमादि लब्धि वि. संयम फल प्राप्त करते हैं।
बुध्यन्ते = केवली होते हैं।
मुच्यन्ते = भवोपग्राही कर्म से छूटते हैं।
परिनिर्वान्ति = संपूर्ण संपूर्ण निवृत्त होते हैं। अर्थात् –
सर्वदुःखानां अंतं कुर्वन्ति = शारीरिक- मानसिक भेद वाले सभी दुःखों का विनाश करते हैं।

अब इस प्रकार कहकर चिंतामणि समान प्रवचन में कर्ममल के प्रक्षालन में समर्थ ऐसे श्रद्धा रूपी पानी के समूह को प्रगट करते हुए कहते हैं –

सूत्र तं धम्मं सद्दहामि पत्तियामि रोएमि फासेमि अणुपालेमि, तं धम्मं सद्दहंतो पत्तियंतो रोयंतो फासंतो अणुपालंतो तस्स धम्मस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए ससंजमं परिजाणामि संजमं उवसंपज्जामि सबंभं परिजाणामि बंभं उवसंपज्जामि अकप्पं परिजाणामि कप्पं उवसंपज्जामि अण्णाणं परिजाणामि नाणं उवसंपज्जामि अकिरियं परिजाणामि किरियं उवसंपज्जामि मिच्छत्तं परिजाणामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि अबोहिं परिजाणामि बोहिं उवसंपज्जामि अमग्गं परिजाणामि मग्गं उवसंपज्जामि।

जो यह निर्ग्रंथ प्रवचन रूप धर्म कहा गया, उस धर्म की मैं श्रद्धा करता हूँ, प्रीति से उसे स्वीकारता हूँ, तीव्र अभिलाष से आसेवन के अभिमुख होने रूप रुचि करता हूँ, आसेवना से उसका स्पर्श करता हूँ, बार-बार सेवन करने से अनुपालन करता हूँ।
प्रीति और रुचि भिन्न ही है e.g. दर्शन वि. में प्रीति होने पर भी रुचि हमेशा नहीं होती।
उस धर्म की श्रद्धा करता हुआ, स्वीकारता हुआ, रुचि करता हुआ, स्पर्श करता हुआ, अनुपालन करता हुआ मैं उस धर्म की आराधना में तैयार। उपस्थित हूँ (अब्भुट्ठिओमि)

के विषय में
आराहणाए) विराधना में निवृत्त/विरत हूँ (विरओमि विराहणाए)। यही बात विस्तार से कहते हैं -

असंयम की प्रतिज्ञा करता हूँ अर्थात् ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से पच्चक्खाण करता हूँ और संयम को स्वीकारता हूँ।

वस्ति - अनियम रूप अब्रह्म की प्रतिज्ञा करता हूँ, ब्रह्म को स्वीकारता हूँ। असंयम का प्रधान अंग होने से अब्रह्म के कारण का परिहार करने के लिए असंयम के बाद तुरंत इसे कहा।

असंयम का अंग होने से ही कहते हैं - अकल्प यानि अकृत्य का त्याग, कृत्य का स्वीकार।

बंध का एकविध कारण असंयम है, द्विविध - अज्ञान और अविरति है। दूसरे बंध के कारण की अपेक्षा से कहते हैं - अज्ञान का त्याग, भगवान् के वचन से उत्पन्न ज्ञान का स्वीकार।

अज्ञान के भेद के परिहार के लिए कहते हैं - अक्रिया = नास्तिकवाद, क्रिया = सम्यग्वाद।

तीसरा बंध कारण कहते हैं - मिथ्यात्व और सम्यक्त्व।

इनका ही अंग होने से कहते हैं - अबोधि = मिथ्यात्व का कार्य, सम्यक्त्व का कार्य = बोधि।

सामान्य से कहते हैं - मिथ्यात्वादि उन्मार्ग, सम्यक्त्वादि मार्ग।

अब छद्मस्थ होने से सभी दोष की शुद्धि के लिए कहते हैं -

सूत्र जं संभरामि जं च न संभरामि जं पडिक्कमामि जं च न पडिक्कमामि तस्स सव्वस्स देवसियस्स अइयारस्स पडिक्कमामि समणोऽहं संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मो अनियाणो दिट्ठिसंपण्णो मायामोसविवज्जिओ।

जो कुछ स्मरण करता हूँ और छद्मस्थ के अनाभोग से जो स्मरण नहीं करता, आभोगादि से पता चलने पर जिसका प्रतिक्रमण करता हूँ, सूक्ष्म - पता नहीं चला हुआ जिसका प्रतिक्रमण नहीं करता, ऐसे जो कोई दैवसिक अतिचार हो उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

इस प्रकार प्रतिक्रमण कर पुनः अकुशल प्रवृत्ति के परिहार के लिए स्वयं की आलोचना करते हुए कहते हैं- मैं श्रमण हूँ। इसमें भी चरकादि नहीं किंतु संयत हूँ, भूत की निंदा और भविष्य के संवर से विरत हूँ। इसीलिए अभी न करने से प्रतिहत पापकर्म वाला और भूत की निंदा-भविष्य की में न करने से प्रत्याख्यात पापकर्म वाला मैं हूँ।

निदान प्रधान दोष है इसलिए आत्मा उससे शून्य है यह बताने कहते हैं- निदान रहित हूँ। सकल गुणों के मूलभूत गुण से मैं युक्त हूँ, ऐसा बताते हैं - दृष्टि संपन्न - सम्यग्दर्शन से युक्त हूँ।

आगे किया जाने वाला वंदन द्रव्य से न हो किंतु भाववंदन हो, इसलिए कहते हैं - मायामृषावाद से रहित अर्थात् माया सहित मृषावाद से रहित हूँ।

अब. इस प्रकार हमा साधु क्या करता है—

सूत्र अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पनरससु कम्मभूमीसु जावंति केइ साहू रयहरणगुच्छपडिग्गहधारा पंचमहव्वयधारा अट्ठारसहस्ससीलंगधारा अक्खुयायारचरित्ता ते सव्वे सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि।

जंबूद्वीप-धातकीखंड-अर्द्ध पुष्कर द्वीप रूप $2\frac{1}{2}$ द्वीप-समुद्र में ५ भरत-५ ऐरावत-५ विदेह रूप १५ कर्मभूमि में जितने साधु रजोहरण-गुच्छ-पात्र धारी हैं:

निह्नवादि के व्यवच्छेद के लिए - ५ महाव्रत धारी।

प्रत्येकबुद्धादि कुछ साधु रजोहरणादि किसी एक अंग से विकल होते हैं। उनके संग्रह के लिए कहते हैं - १८ हजार शीलांग धारी। (अथवा द्रव्यलिंग रूप एक अंग से विकल, भावलिंग रूप अंग से युक्त)

अक्षत आचार रूप चारित्र वाले।

गच्छ में रहे हुए या न रहे हुए उन सभी (ते सव्वे) को सिर से, मन से मस्तक से मैं वंदन करता हूँ।

★ १८००० शीलांग - जोए करणे सन्ना इंदिय भोमाइ समणधम्मे य।
सीलंगसहस्साणं अट्ठारसगस्स निप्फत्ती॥

3 योग × 3 करण × 4 संज्ञा × 5 इंद्रिय × 10 पृथ्व्यादि जीव (अजीव) × 10 श्रमण धर्म = 18000।

अब इस प्रकार साधुओं को वंदन करके सभी जीवों को क्षमा याचना और मैत्री करते हैं–

सूत्र खामेमि सव्वजीवे सव्वे जीवा खमंतु मे। मित्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झं न केणइ ॥1
एवमहं आलोइय निंदिय गरहिय दुगुंछियं सम्मं। तिविहेण पडिक्कंतो वंदामि जिणे चउवीसं ॥2

मैं सभी जीवों को क्षमा करता हूँ। सभी जीव मुझे क्षमा करे। सभी जीवों पर मेरी मैत्री है, किसी के साथ मुझे वैर नहीं है।
इस प्रकार मैं सम्यक् प्रकार से आलोचना कर (गुरु को कहकर), निंदा कर (स्व साक्षी से), गर्हा कर (पर साक्षी से), दुर्गंछा कर 3 प्र. से (मन-वचन-काया) से प्रतिक्रांत हुआ 24 जिनों को वंदन करता हूँ।

★ अन्य जीवों को भी अक्षमा से कर्मबंध न हो, इस करुणा से 'सव्वे जीवा खमंतु मे' कहा है।

★ ऐसे दैवसिक प्रतिक्रमण कहा। रात्रिक भी ऐसा ही जानना, मात्र जहाँ दैवसिक अतिचार कहा है, वहाँ रात्रिक अतिचार कहना।

★ प्र. रात्रिक प्रतिक्रमण में 'इच्छामि पडिक्कमिउं गोयरचरियाए' वि. सूत्र अनर्थक है क्योंकि रात्रि में यह असंभव है। उ. स्वप्नादि में संभव है।

अनुगम कहे गए। नय पूर्ववत्। (भाग 4 पृ. पर देखें)

श्री प्रतिक्रमणाध्ययनं समाप्तम्।

श्री कायोत्सर्गाध्ययनम्।

प्रतिक्रमण अध्ययन की व्याख्या की गई। कायोत्सर्गाध्ययन शुरू किया जाता है। इसका संबंध-

① पूर्व के अध्ययन में वंदनादि न करने वि. से स्खलित की निंदा की गई। यहाँ तो स्खलित से हुए अपराध रूपी घाव विशेष संभव होने से ~~मात्र~~ इतने से (मात्र निंदा से) शुद्ध न हुए साधु की प्रायश्चित्त रूप औषध से चिकित्सा की जाती है। अथवा

② प्रतिक्रमणाध्ययन में मिथ्यात्वादि प्रतिक्रमण से कर्म के कारण का निषेध किया। यहाँ काउसग्ग से पूर्व संचित कर्म का क्षय कहा। अथवा

③ सामायिक में चारित्र कहा। चतुर्विंशति स्तव में अर्हद् अरिहंतों की स्तुति कही, वह ज्ञान-दर्शन रूप है। इनके वितथ सेवन ~~के~~ गुरु को कहना चाहिए, वह वंदन पूर्वक होता है इसलिए वंदन कहा। निवेदन कर पुनः शुभ स्थानों में क्रमण यानि सेवन करना चाहिए यह प्रतिक्रमण में कहा। तो भी अशुद्ध रहे कोई अपराध रूप व्रण की चिकित्सा प्रायश्चित्त रूप औषध से यहाँ कही जाती है।

अत. वह प्रायश्चित्त औषध विचित्र है, ऐसा कहते हैं-

गा. 1419 1. आलोचना 2. प्रतिक्रमण 3. मिश्र 4. विवेक 5. व्युत्सर्ग 6. तप 7. छेद 8. मूल 9. अनवस्था 10. पारांचि

1. आलोचना = प्रयोजन से 100 हाथ के बाहर गमनागमनादि में गुरु को कहना।
2. प्रतिक्रमण = सहसा (उपयोग रखने पर भी सचानक) अशमितादि में मिच्छामि दुक्कडं देना।
3. मिश्र = शब्दादि में रागादि करने में मिच्छामि दुक्कडं कहना और ~~प्रतिक्र~~ गुरु को कहना।
4. विवेक = किसी तरह ग्रहण किए हुए अन्नादि का त्याग।
5. व्युत्सर्ग = कुस्वप्नादि में काउसग्ग।
6. तप = कर्म तापयति इति। पृथ्वीकायादि का संघट्ट वि. में निवि वि.।
7. छेद = जो तप से न डरकर भी पाप से न रुके, उसके पर्याय का छेद।
8. मूल = पुनः व्रतारोपण।
9. ~~अनवस्था~~ = अनवस्थाप्यता = साधु वि को मारने वि. दोष में अधिक दुष्ट परिणाम होने से व्रतों में स्थापित नहीं किया जाता, इसे अनवस्थाप्य कहते हैं। उसका भाव अनवस्थाप्यता।

10. पारांचिक = कोई पुरुष विशेष (आचार्य) साध्वी - राजपत्नी वि. के साथ अकार्य करे तब उन्हें पारांचिक प्रायश्चित्त होता है। प्रायश्चित के पार को प्राप्त यानि जिससे ऊपर कोई प्रायश्चित्त न हो।

अब ऐसे प्रायश्चित्त औषध कहा। अब व्रण कहते हैं। व्रण २ प्र. - द्रव्यव्रण, भावव्रण। द्रव्यव्रण शरीर पर घाव रूप। यह द्रव्यव्रण २ प्र. -

गा. 1420 द्रव्य व्रण २ प्र. - तद्उद्भव = फुंसी वि., आगंतुक = कौंटे वि. से होने वाला। आगंतुक का शल्योद्धार किया जाता है, तद्उद्भव का नहीं।

गा. 1421 (आगंतुक कौंटे वि. लगने पर उसे शरीर से निकालना और उत्तरपरिकर्म कहते हैं -) जो कौंटा दीखता हो, तीक्ष्ण न हो, जिससे खून न निकला हो, मात्र बाहर की चमड़ी पर ही लगा हो, उस कौंटे को निकालकर त्याग देते हैं और घाव को दबाना वि. भी नहीं किया जाता।

गा. 1422 यदि कौंटा कुछ दृढ़ लगा हो तो कौंटा निकालकर घाव को घिसा जाता है। वि. तीसरे प्र. के कौंटे से शल्य का उद्धार, घाव का मर्दन और घाव में कान का मैल भरना वि. किया जाता है।

गा. 1423 और ज्यादा अंदर गए चौथे प्र. के कौंटे को निकालकर थोड़ा खून निकाला जाता है, जिससे वेदना न हो। इसी प्र. का शल्य ज्यादा रौद्र होने से घाव वाले को हलने-चलना वि. क्रिया का निषेध किया जाता है जिससे जल्दी ठीक हो।

गा. 1424 छठां प्र. का शल्य हो तो हित-पथ्य और मित-थोड़ा अथवा न खाने वाले को जल्दी ठीक होता है। सबसे प्र. के शल्य में जितना भाग शल्य से दूषित हो उतना भाग काट दिया जाता है।

गा. 1425 यदि काटने पर भी घाव फैलता है तो हड्डी सहित उस अंग को काटना पड़ता है।

अब द्रव्य व्रण और उसकी चिकित्सा कही। भावव्रण कहते हैं -

गा. 1 (प्रक्षिप्त) मूल-उत्तरगुण रूप चरण पुरुष है। इन मूल-उत्तर गुण के अपराध कौंटे रूप हैं। उन कौंटे से भावव्रण उत्पन्न होता है।

अव. आवश्यक के ५ प्र. और उनकी चिकित्सा –

गा. 1426 पहले प्र. के अतिचार भिक्षाचर्या-स्थंडिल जाना वि. संबंधी आलोचना से ही शुद्ध होते जाते हैं। अप्रत्युपेक्षित भूमि में कफ परठना वि. से हुए दूसरे प्र. के अतिचार 'हा असमितो' इत्यादि प्रतिक्रमण से ठीक होते हैं।

गा. 1427 इष्ट-अनिष्ट विषयों में क्रमशः राग-द्वेष करना वि. से हुए तीसरे प्र. के अतिचार मिश्र यानि आलोचना और प्रतिक्रमण से ठीक होते हैं। अनेषणीय अन्नादि के अतिचार चौथे प्र. के त्याग से ठीक होते हैं।

गा. 1428 कोई कुस्वप्नादि अतिचार काउसग्ग से, कोई संघट्टा वि. से हुए अतिचार निवि वि. तप से शुद्ध होते हैं। (5वें) उससे भी शुद्ध नहीं होते गुरुतर अतिचार को छेद (6ठें) विशेष शुद्ध करते हैं।

अव. ऐसे ५ प्र. के व्रण और उनकी चिकित्सा बतायी। प्रायश्चित्त स्वस्थान से जानना, यहाँ विस्तार करते हैं। आनुसंगिक कहा गया।

अब प्रकृत बताते हैं। इस प्रकार अनेक संबंध से आए हुए कायोत्सर्ग अध्ययन के ५ अनुयोग द्वार विस्तार से कहना चाहिए। वहाँ नाम, निक्षेप (निष्पन्न) द्वार में २ शब्द कायोत्सर्ग और अध्ययन (देखें अनुयोगद्वार ~~short~~ भा. १ पृ. , भाग ५ पृ. अव.)। 'कायोत्सर्ग' शब्द की द्वार गाथा

गा. 1429 (6 द्वार गा.) A. निक्षेप B. एकार्थ C. विधान मार्गणा D. काल, E. भेद परिमाण F. अशठ G. शठ H. विधि I. दोष J. कस्य K. फल, ये द्वार हैं।

☆ A. नामादि निक्षेप कहना B. एकार्थ कहना C. विधान = भेद कहना।

D. कालपरिमाण – अभिभव काउसग्ग वि. का काल कहना।

E. उत्सृतादि काउसग्ग के भेद कहना। F. G. अशठ-शठ काउसग्ग के कर्ता कहना।

H. विधि – काउसग्ग की विधि कहना। I. दोष – काउसग्ग के दोष कहना।

J. कस्य – काउसग्ग के अधिकारी कहना। K. फल – इहलौकिक-पारलौकिक फल कहना।

अव. A. निक्षेप द्वार – काया और उत्सर्ग २ शब्द के निक्षेप कहना चाहिए। यही बात भाष्यकार

कहते हैं -

भा. 231 निक्षेप में 2 भेद हैं - काय, उत्सर्ग।

गा. 1430 काय के 12 निक्षेप, उत्सर्ग के 6 निक्षेप।

गा. 1431 काय के निक्षेप - नाम स्थापना शरीर गति निकाय अस्तिकाय द्रव्य मातृ संग्रह पर्याय भार भाव।

गा. 1432 नामकाय = ① किसी सचित्त-अचित्त पदार्थ का नाम 'काय' रखे।
② शरीर की ऊँचाई को भी काय कहते हैं। ③ प्राकृत में स्फटिक को भी काय कहते हैं।
④ ढंचे हुए लेखादि भी 'निकाचित' कहे जाते हैं। उन्हें भी 'निकाय' कहा जाता है।

गा. 1433 स्थापना काय = ① अक्ष, वराटक, (कौड़ी) काष्ठ या पुस्तक पर चित्रकर्म सद्भाव और असद्भाव दोनों प्र. को

गा. 1434 मिट्टी वि. से बने हाथी में हाथी की सद्भाव स्थापना और चतुरंग वि. में अक्ष (Dice) को हाथी रूप में थापना वह असद्भाव स्थापना।

गा. 1435 शरीर काय = शीर्यन्ते इति शरीराणि, तै एव पुद्गल संघातरूपत्वात् कायः शरीरकायः 5-प्र.
① औदारिक = उदार पुद्गलों से बना हुआ। ② वैक्रिय = विविधा क्रिया विक्रिया तस्यां भवं।
③ आहारक = प्रयोजनार्थिना आहियते। ④ तैजस = तेजोमय।
⑤ कार्मण = कर्मणा निर्वृत्तं।

गा. 1 (प्रक्षिप्त) गति काय = नरक-तिर्यंच-नर-देव रूप 4 गति में जीवों के जो शरीर ~~की जो ऊँचाई~~, वह गतिकाय।

प्र. शरीर काय में भी यही कहा गया क्योंकि औदारिकादि से अलग कोई गति में शरीर नहीं होते।

उ. विशेषण के सामर्थ्य से गतिकाय होता है। 'गतौ कायः गतिकायः' ये यहाँ विशेषण हैं। जैसे संसारी जीव त्रस और थावर होते हैं। फिर वे ही पुं-नपुं-स्त्री विशेषण से भी अलग होते हैं। इसी प्रकार यहाँ भी अपेक्षा भिन्न है।

गा. 1436 अथवा सभी जीवों का अपान्तरालगति में जो काय वह गतिकाय। यह जितने समय जीव अपान्तराल में होता है, उतने समय ही होता है।

गा. 1437 (पूर्वार्द्ध) निकायकाय = नित्य ऐसा जो काय वह निकाय। जीव तीनों काल में होने से निकाय है।

अथवा अधिक ऐसा काय निकाय eg. अधिक दाह=निदाह। धर्म-अधर्म एक हैं, जीव अनेक होने से निकाय हैं; ऐसे अधिकता है। अथवा अधिकता की दूसरी विवक्षा—

टीप्पणक एक से लेकर असंख्य तक पृथ्वीकाय के जीव को काय कहते हैं, उसमें अन्य भी स्वजातीय पृथ्वीकायिक जीवों को जोड़ने पर यही काय निकाय कही जाती है। ऐसे ही अप्-तेउ-वाउ-वनस्पति में भी निकाय जानना। ऐसे पृथ्व्यादि सभी भेद में प्रत्येक में निकायता कह सकते हैं किंतु यहाँ सामान्य से सभी जीवसमूह को निकाय कहने की विवक्षा है। ऐसे यदि यह विवक्षा नहीं मानो तो आगे कही जाने वाली व्याख्या के भेद के अभाव की आपत्ति होगी। अतः यहाँ 'निकाय एव कायः निकायकायः' ऐसा कर्मधारय समास करना। आगे की व्याख्या में 'निकायानां कायः' षष्ठी तत्पुरुष करना। इस प्रकार 2 व्याख्या का भेद है।

हरिभद्रीय ~~अथ~~

टीका अथवा पृथ्व्यादि 6 प. के निकाय।

गा. 14 पू (उत्तरार्द्ध) अस्तिकाय = अस्ति तीनकाल को बताने वाला निपात है। बहुत प्रदेश जिसके थे, हैं और रहेंगे वह अस्तिकाय। ऐसे 6 ही अस्तिकाय हैं, न्यून नहीं, अधिक भी नहीं।
ये 6 हैं— धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय।

टीप्पणक अनेन च ... परिहृतमवगन्तव्यं—

प्र. कायशब्द समूहवाची होने से धर्म-अधर्म-आकाश तो एकद्रव्य होने से अस्तिकाय नहीं होंगे। अतः '6 अस्तिकाय हैं' यह अयुक्त है। यदि एकरूप वाले भी इनको अस्तिकाय मानोगे तो अद्धा-समय को भी अस्तिकाय मानना पड़ेगा। ऐसे 7 अस्तिकाय होंगे।

उ. इसका समाधान गाथा में एवकार अर्थ वाले तु शब्द से और 'बहुप्रदेश' के ग्रहण से दिया है। धर्म-अधर्म-आकाश का बहुप्रदेशत्व आगम में अनेक प्रकार से प्रतिपादित होने से निश्चयरूपता का विरोध न होने से कायशब्द की प्रवृत्ति दुष्ट नहीं ही है। अद्धासमय तो वर्तमान के 1 समय मात्र रूप वाला होने से समूह नहीं होता और आगम में कहीं भी न कहा होने से कायशब्द की प्रवृत्ति नहीं होती। अतः 6 ही अस्तिकाय

होते हैं, कम-ज्यादा नहीं। गंधहस्ती (तत्वार्थ सूत्र के टीकाकार सिद्धसेन गणि) ने किसी विवक्षा से काल को भी अस्तिकाय कहा है, उस विवक्षा को यहाँ नहीं कहते।

हरिभद्रीय टीका गा.1438 द्रव्यकाय = जो वस्तु ~~इस भाव~~ भविष्य में होने वाले भाव के योग्य- अभिमुख है अथवा जिस वस्तु ने भूत काल में पर्याय (भाव) को प्राप्त कर छोड़ दिया है, वह वस्तु द्रव्य कही जाती है। यहाँ वस्तु यानि जीव-पुद्गल द्रव्य लेना, धर्मास्तिकायादि नहीं। ex. जो पुरुषादि मरकर देव बनने वाला है या बद्धायुष्क है या अभिमुखनामगोत्र है, वह योग्य होने से द्रव्य देव कहा जाता है। अथवा जिसने देवत्व का अनुभव किया है वह द्रव्य देव। इस प्रकार द्रव्यनारकादि और परमाणु भी जो काय के योग्य हैं, वे द्रव्यकाय कहे जाते हैं।

भा.232 प्र. यहाँ तृशब्द से जीव-पुद्गल द्रव्य को रखकर धर्मादि का व्यवच्छेद क्यों किया?

गा.1439 उ. क्योंकि उनमें इस प्रकार का द्रव्य का लक्षण नहीं घटता। वे हमेशा ही अस्तिकायत्व से युक्त होते हैं। यदि पूर्व में कभी अस्तिकाय नहीं होते थे या भविष्य में कभी अस्तिकायत्व छोड़ने वाले हों तो उस समय उन्हें द्रव्य अस्तिकाय कहते।

गा.1440 प्र. वस्तु जिस भाव में वर्तती हो वह तद्भाव। ऐसे तद्भाव के आश्रय से धर्मादि द्रव्य का द्रव्य अस्तिकायत्व नहीं ~~घटेगा~~ घटता है तो द्रव्य देव वि. भी नहीं घटेंगे क्योंकि उनमें भी यह तद्भाव तो है ही अर्थात् वे भी कोई-न-कोई भाव में तो वर्तते ही हैं।

उ. द्रव्य देव में अभी मनुष्यत्वादि भाव वर्तते हैं। अतः अभी देवत्व प्रगट न होने से इनमें द्रव्य निक्षेप घटेगा। किंतु धर्मादि द्रव्य अस्तिकायत्व से कभी रहित हुए नहीं और रहेंगे नहीं अतः उनमें द्रव्य निक्षेप नहीं घटेगा।

गा.1441 प्र. भूतकाल का 1 भव और आने वाला 1 भव, ये दोनों वर्तमान भव के भाव (पर्याय) से रहित हैं। ऐसे इन 2 भव सिवाय भी पूर्व के और भविष्य के अनंत भव भी वर्तमान भव की पर्याय से रहित हैं। अतः जैसे 2 अनंतर भवों को उस जीव का कहने से अर्थात् उसमें द्रव्यत्व कहते हो तो ~~इसे के~~ शेष अनंत भवों में भी कहो।

ⓑ यदि अनंत भवों में भी द्रव्य निक्षेप कहो तो क्या दिक्कत है।

गा.१५५८ (b) एक पुरुष को एक काल में अनेक भव अर्थात् अनेक भवों का द्रव्य निक्षेप का व्यपदेश नहीं धरता।

(a) ऐसा नहीं कहते क्योंकि वर्तमान भव में जीव को भूत-भविष्य के १-१ भव का आयुष्य संबद्ध है, शेष भवों का नहीं। इस भव में आयु का तीसरा भाग शेष होने पर वह अन भावि भव का आयुष्य बांधता है और पूर्व भव में बांधा हुआ आयुष्य इस भव में भोगता है। शेष अनंत भवों में ऐसा नहीं होता। यदि शेष भव का आयुष्य भी संबद्ध होता तो उसे भी द्रव्य कहते।

गा.१५५३ (इसी अर्थ को बताने लोक में प्रसिद्ध दृष्टांत →) दोनों संध्या में नहीं दिखता हुआ भी सूर्य प्राप्त होने वाले और अतिक्रांत क्षेत्र (भरत-विदेह) को प्रकाशित करता है। ऐसे ही वर्तमान भव में रहा जीव सत्ता रूप में आयुष्य दोनों भवों का स्पर्शता है।

~~गा.~~ भा.२३३ मातृकाकाय = 'उप्पन्नेइ वा...' वि. मातृका, उनका समूह मातृकाकाय। अन्य ~~भी~~ कोई भी बहुत अर्थ वाले पदों का समूह मातृकाकाय। जिस एक पद में बहुत अर्थ हो उनका समूह।

गा.१५५५ संग्रहकाय = एक वचन से ही जहाँ बहुत सारों का संग्रह किया हो। Eg. शालि – बहुत सारे चावल। ग्राम = बहुत सारे लोग, घर वि. बहुत सारे हाथी वि. सेना।

गा.१५५५ पर्यायकाय = पुनर्भवन्ति इति पर्यायाः। यानि वस्तु के धर्म। जिस परमाणु वि. में बहुत पर्याय पिंडित हो, वह पर्याय काय। कोई एक सांव्यवहारिक परमाणु में भी वर्णादि अन्य परमाणु की अपेक्षा अनंत गुण होते हैं। (सांव्यवहारिक परमाणु = अनंत सूक्ष्म परमाणु से बना परमाणु)

गा.१५५६ भारकाय = यहाँ काय यानि दूध। एक काय यानि दूध को २ घड़े में भरने से वह २ भाग में बँट गया। (प्रतिक्रमण सद्धयवन में परिहरणा में उदाहरण – २ कावड़ में दूध ले जा रहा था। एक कावड़ से टकराने से फूटा। उसके फूटे हुए के कारण दूसरा भरा हुआ कावड़ भी फूट गया)। भारकाय यहाँ २ कावड़ में भरे दूध को लेना। अन्य मत – एक ही घड़े में भरा दूध।

गा.१५५७ भावकाय = सचेतन या अचेतन में औदयिकादि २, ३, ४ या ५ भावों का समूह।

अव. A. काय के निक्षेप पूर्ण। (देखें भा.२३१ Pg.५०)। अब B. काय शब्द के एकार्थक – (देखें गा.१५२९ Pg.३९)

गा.1448 काय शरीर देह बोन्दी चय उपचय संघात उच्छ्रय समुच्छ्रय कलेवर भस्त्रा तनु पाणु।

अव. ~~उत्त~~ काय शब्द के निक्षेप और ~~एकार्थ~~ एकार्थक कहे (देखें गा.1423, पृ.39, भा.231 पृ.40)। अब उत्सर्ग के निक्षेप और एकार्थक कहते हैं-

गा.1449 उत्सर्ग के 6 निक्षेप - नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव।

गा.1450 नाम-स्थापना सरल है। द्रव्योत्सर्ग = ① जिस अनेषणीय द्रव्य का त्याग करे।
② जिस पात्रे वि. करण रूप द्रव्य से त्याग करे।
③ जिस द्रव्य में त्याग करे। ④ जो अनुपयुक्त जीव त्याग करे।
क्षेत्रोत्सर्ग = ① दक्षिणदेश वि. जो क्षेत्र छोड़े। ② जिस क्षेत्र में उत्सर्ग का वर्णन करे।
कालोत्सर्ग = ① जिसकाल को छोड़े eg. साधु प्रोजन के लिए रात का त्याग करते हैं।
② जिस काल में उत्सर्ग का वर्णन किया जाए।

गा.1451-2 भावोत्सर्ग = २प्र. प्रशस्त, अप्रशस्त। त्याग योग्य वस्तु में रहे जिस धर्म/भाव के कारण वह वस्तु छोड़ी जाय, वह भावोत्सर्ग। eg. खर-परुष (कठोर) बोलने वाले सचित्त शिष्यादि और दुर्गंध-विरसादि के कारण द्रव्य छोड़ा जाए, वह भाव के कारण त्याग किया जाता होने से भावोत्सर्ग।

गा.1453 एकार्थक - उत्सर्ग व्युत्सर्जना उज्झना अवकिरण छर्दन विवेक वर्जन त्यजन उन्मोचना परिशातना शातना।

अव. A. निक्षेप B. एकार्थक द्वार पूर्ण (देखें गा.1423 पृ 39)। C. विधानमार्गणाद्वार -

गा.1454 कायोत्सर्ग २प्र. - चेष्टा और अभिभव से। भिक्षाचर्यादि में चेष्टा कायोत्सर्ग, दिव्यादि विषयक उपसर्ग आने पर अभिभव कायोत्सर्ग। अर्थात् भिक्षाचर्यादि के में अन्य चेष्टा का त्याग और दिव्यादि उपसर्ग आने पर 'मेरे द्वारा उपसर्ग सहन किए जाना चाहिए, डरना नहीं चाहिए' ऐसे अभिभव काउत्सग। (उपसर्ग का अभिभव करने कायोत्सर्ग)

अव. पूर्वपक्ष - साधु को काउस्सग्ग में अभिभव नहीं करना चाहिए, इसका खंडन-
गा.1455 पू. सामान्य से किसी भी जगह साधु को किसी का भी अपमान करना योग्य नहीं है तो कर्म क्षय के लिए किया जाता काउस्सग्ग तो सर्वथा गर्वरहित होकर करना चाहिए। जैसे गर्व से शत्रु नगर को घेरना अच्छा नहीं है वैसे ही गर्व से यह काउस्सग्ग भी अच्छा नहीं है।

गा.1456 उ. भयमोहनीय या हास्यषट्क रूप मोहनीय कर्म का पराभव कर जो साधु काउस्सग्ग करता है, उसका वह पराभव 'पराभव' नहीं कहा जाता। अर्थात् भय के बाह्य कारण रूप दिव्य-मनुष्य-तिर्यंच का नहीं किंतु आंतर कारण रूप मोहनीय कर्म का अभिभव कर काउस्सग्ग करना चाहिए।

पू. ऐसा अभिभव भी अभियोग तो है ही।

गा.1457 उ. ऐसे अभियोग का आगम में निषेध नहीं है। किंतु जैसे कोई सैनिक शत्रु को बुलाता है- 'ए! कहाँ जाता है? इधर लड़ने आ' ऐसे ही यदि साधु देव को कहे - 'रे देव! मुझे उपसर्ग कर, मैं तुझसे नहीं डरता' फिर काउस्सग्ग करे तो यह देव का अपमान कहा जाता है। किंतु ऐसे साधु कभी भी देव का अपमान नहीं करता।

गा.1458 पू. भय भी कर्म का अंश है और कर्म का भी एकांत से पराभव योग्य नहीं है।

उ. आठों कर्म संसार के कारण होने से शत्रु रूप है, वे अचेतन हैं। अतः उनके जय के लिए सामने से तैयार मुनि एकांत से गर्व रहित होते हैं और 12 प्र. के तप - 17 प्र. के संयम करते हैं। अतः कर्मजय के लिए कर्म का अपमान और अपमान के लिए काउस्सग्ग करना ही चाहिए।

गा.1459 कर्मशत्रु की सेना में 4 कषाय प्रधान हैं। इनके जय के लिए भी मुनि अप्रशस्त अभिभव-कायोत्सर्ग करते हैं।

अव. C. विधान मार्गणा द्वार पूर्ण (देखें गा. 1454 Pg. 39)। D. काल परिमाण द्वार -
गा.1460 अभिभव कायोत्सर्ग का ~~जघन्य~~ उत्कृष्ट काल 1 वर्ष, जो बाहुबली ने किया था। जघन्य काल

अंतर्मुहूर्त। चेष्टा कायोत्सर्ग का काल परिमाण अनेक भेद से भिन्न है, अतः उसे बाद में कहेंगे।)

अब- D. काल परिमाण द्वार सामान्य से पूर्ण। E. भेद परिमाण द्वार (गा. 1429 Pg. 39) -

गा. 1462-2 1. उत्सृतोत्सृत, 2. उत्सृत, 3. उत्सृतनिषण्ण, 4. निषण्णोत्सृत, 5. निषण्ण, 6. निषण्णनिषण्ण, 7. निषण्णोत्सृत, 8. निषण्ण, 9. निषण्णनिषण्ण - इन पदों में प्रत्येक की प्ररूपणा कहूँगा। (व्याख्या गा. 1481-2, 1490-98 में)

गा. 1463 उत्सृत = खड़ा, निषण्ण = बैठा, निवण्ण = सोया। इन तीनों पदों में प्रत्येक की चतुर्भंगी -

	द्रव्य से	भाव से	
(a)	✓	✓	= खड़े हुए कायोत्सर्ग में धर्म-शुक्ल ध्यान वाला।
(b)	✓	×	= " " " ध्यान चतुष्टय रहित।
(c)	×	✓	} स्पष्ट है।
(d)	×	×	

कोई कृष्णादि लेश्या के परिणाम वाला हो तब रौद्र या आर्त ध्यान हो किंतु जब वह सो गया हो तब जगा न होने से चार में से एक भी ध्यान न हो। (ऐसे ही निषण्ण-निवण्ण की चतुर्भंगी)

अब- इस प्रकार सामान्य से भेद परिणाम दिखाने पर शिष्य - कायोत्सर्ग से क्या लाभ है?-

गा. 1464 1. देहजाड्यशुद्धि - कफ वि. के नाश से देह की जड़ता नष्ट होती है।

2. मतिजाड्यशुद्धि - कायोत्सर्ग में उपयोग विशेष से।

3. सुखदुःखतितिक्षा - सहन करना।

4. अनुप्रेक्षा - अनित्यत्वादि भावना।

5. धर्म - शुक्ल ध्यान।

6. एकाग्रता - शेष व्यापार के अभाव से चित्त की एकाग्रता बढ़ती है।

(अनुप्रेक्षा ध्यान की शुरुआत और ध्यान के उपरम में होती है इसलिए ध्यान और अनुप्रेक्षा अलग कही है।)

गा. 1465 ध्यान = अंतर्मुहूर्त तक चित्त की एकाग्रता। उसका स्वरूप प्रतिक्रमणाध्ययन में कहा। (ध्यान शतक)

गा. 1466 उनमें प्रथम दो ध्यान संसारवर्धक हैं। शेष 2 मोक्ष के हेतु हैं, इनका ही यहाँ अधिकार है।

अब ध्यान कैसे करते हैं-

गा.1467-8 (क:) प्राणातिपातादि आश्रव द्वारों को स्थगित कर, (ख) गंधर्वादि रूप भावव्याबाधा से रहित और पाषाणादि द्रव्य कंटक से रहित देश में, (कथं) निष्प्रकंप-स्थिर स्थिति में, खड़े हुए, बैठे हुए या सोए हुए, पुरुषादि चेतन या प्रतिमादि अचेतन वस्तु का आलंबन लेकर यानि विषय बनाकर, मन से अत्यंत ध्यान करते हैं, (किं) सूत्र अथवा अर्थ। यहाँ जब सूत्र का ध्यान करते हैं, तब सूत्र के ही धर्मों (अक्षर, पद, मात्रा, छंद, अलंकारादि) को ही सोचते हैं, अर्थ नहीं। जब अर्थ का ध्यान करते हैं तब द्रव्य या पर्याय को सोचते हैं, सूत्र नहीं।

अब शंका-उत्तर-

गा.1469-9 70-71-72 ध्यै धातु चिंता अर्थ में होने से ध्यान मन का ही परिणाम है?

उ. ऐसा नहीं है क्योंकि ध्यान जिनेश्वरों ने तीनों योग में देखा है। किंतु प्रधानता की अपेक्षा से कभी किसी एक का ही व्यपदेश होता है। जैसे वातादि धातुओं में से जो धातु उत्कट होती है, वह कुपित कही जाती है किंतु शेष 2 धातु भी होती ही है। ऐसे ही तीन योग में से जो योग जब उत्कट होता है, तब उसका निर्देश होता है। शेष वहाँ 1 या 2 होता है या एक भी नहीं होता। जैसे-केवली को वचन योग उत्कट होने पर 1 काय योग होता है, हमें मन-काय योग 2 होते हैं, केवली को काययोग निरोध में काय योग उत्कट होने पर एक भी योग नहीं होता। इस पद से 'योग का उत्कट होना और निरोध दोनों ध्यान है' यह कहा।

अब तीनों योग में ध्यान बताते हैं- आत्मा में जो रहे, वह अध्यात्म। यानि ध्यान। यह ध्यान काया में भी होता है, जब एकाग्रता से हलन-चलनादि का निरोध हो। यह ध्यान वचन में भी होता है, जब जीव एकाग्रता से जयणा रहित भाषा का निरोध करता है। मन का भी ध्यान होता है।

गा.1477 जैसे रेह में व्याप्त विष को इंक के स्थान में लाकर इकट्ठा और स्थिर किया जाता है, वैसे ही किसी एक वस्तु में एकाग्र चित्त को स्थिर करना मानस ध्यान है। ऐसे ही वचन-काया में भी एकाग्रधारणा और निरोध करने से ध्यान का लक्षण घट जाने से वाचिक-कायिक योग भी

ध्यान है।

गा. ~~1473~~ 1474 ऐसे तीन पु. होने से जब जिसकी उत्कटता होती है, तब उसका व्यपदेश होता है। यह न्याय लोक - लोकोत्तर दोनों जगह है।

लोक में - देशिक द्वारा बताए हुए मार्ग पर चलते राजा को 'यह राजा जाता है' ऐसा लोग कहते हैं। प्रधान होने से राजा का व्यपदेश होता है, किंतु मंत्री वि. का नहीं।

गा. 1475 लोकोत्तर में - सम्यग्दर्शन नामक प्रथम गुण का घात करने से अनंतानुबंधी कषाय प्रथम है। इस कषाय के उदय में प्रत्याख्यानादि कषाय का उदय भी होता है किंतु उनका व्यपदेश नहीं होता। ऐसे ही ध्यान के लिए भी जानना।

गा. 1476 'मेरी काया हिले नहीं' ऐसे संकल्प से एकाग्रता से नहीं चलित होते हुए को कायिक ध्यान है। ऐसे ही निरुद्ध मन वाले का मानसिक ध्यान है।

गा. 1477 पु. काया और मन सदा प्रवृत्तिरूप होने से उनकी अप्रवृत्ति ध्यान है। किंतु वचन की तो कभी अप्रवृत्ति ही है, वह सदा प्रवृत्त नहीं है। अत: ~~वाचिक~~ वचन की अप्रवृत्ति ध्यान नहीं होगी

गा. 1478 उ. अयत, सावद्य भाषा का त्याग करने वाले का ही वाचिक ध्यान है।

गा. 1479 'निरवद्य भाषा ही मुझे बोलना है, सावद्य नहीं' ऐसे एकाग्रता से विचारकर बोलने वाले का वाचिक ध्यान है।

गा. 1480 (एक ही समय, एकसाथ तीनों ध्यान बताते हैं -) मन से उपयुक्त होकर काया और वचन का व्यापार करते हुए, तीनों योग शांत परिणाम वाले को भंगिक श्रुत को गुनते हुए के मन-वचन-काया तीनों ध्यान में है।

अब. आनुसंगिक कहा गया। अब भेदपरिमाण में जो उत्सृतोत्सृतादि भेद कहे, इनकी व्याख्या -

गा. 1481-2 1. कोई खड़े-खड़े धर्म-शुक्लध्यान करे, यह उत्सृतोत्सृत कायोत्सर्ग क्योंकि यहाँ शरीर भी ऊँचा, भा. भी

2. कोई कायोत्सर्ग में खड़ा हो किंतु शुक्ल-धर्म या आर्त-रौद्र कोई भी ध्यान से रहित हो, यह उत्सृत।

(देखें गा. 1461-2 पृ. 46)

गा.१४८३-८४ प्र. किस अवस्था में शुभ या अशुभ ध्यान नहीं होता? उ. थोड़ा सोते हुए या सोते हुए, जागते हुए भी जिसने अपना चित्त किसी वस्तु में नहीं लगाया है, जो अभी जन्मा हो, मूर्च्छित हो, दारु वि. के नशे से अत्यक्त चित्त वाला हो।

गा. १४८५ प्र. ऐसे चित्त को भी ध्यान हो तो क्या विरोध है? उ. एक आलंबन पर अत्यंत स्थिर मन ~~को~~ ध्यान है किंतु भावना में अकठोर मन या अस्थिर मन ध्यान नहीं है।

गा.१४८६ प्र. यदि कोमल चित्त अत्यक्त होने से पहले ध्यान नहीं होता तो बाद में व्यक्त कैसे होता है?

उ. थोड़ी भी अग्नि शेष होती है तो इंधन मिलने पर वापस भड़कती है। ऐसे ही मदिरादि से मन अत्यक्त होकर पुनः व्यक्त हो सकता है।

गा.१४८७ प्र. पहले अन्तर्मुहूर्त चित्त की एकाग्रता को ध्यान कहा, फिर अंगिकश्रुत के स्वाध्याय में ३ प्र. का ध्यान एक साथ कहा। यह तो परस्पर विरुद्ध है क्योंकि ३ ध्यान होने पर अनेकाग्र मन, अनेक विषय वाला ध्यान हो गया। मन से कुछ विचारता है, वचन से कुछ बोलता है, काया से कुछ करता है।

उ. (मृ) अनेकाग्र चित्त और अनेक विषय वाला ध्यान ही नहीं होता, वह तो चित्त ही होता है।

गा.१४८८ प्र. यदि ऐसा कहोगे तो ३ प्र. का ध्यान एकसाथ होगा ही नहीं?

उ. ऐसा नहीं होता। वह मन सहित ही काया से करता है और बोलता है अर्थात् मन के उपयोग से क्रिया करता है। ऐसी क्रिया ही भाव करण है, उपयोग रहित क्रिया द्रव्य करण होता है। भाव करण ही ध्यान है। यहाँ अनेकाग्रता-अनेक विषय ही नहीं है क्योंकि मन-वचन-काया एक ही विषय में उपयुक्त हैं। वह जो मन से विचारता है, वही वचन से बोलता है, वही काया से क्रिया करता है।

गा.१४८९ प्र. एकाग्र चित्त ध्यान है। अतः ध्यान भी चित्त होगा। ऐसा होने से कायिक और वाचिक ध्यान संभव ही नहीं है क्योंकि ध्यान तो चित्त है। यदि कायिक-वाचिक ध्यान मानो तो ध्यान को चित्त से अलग मानो क्योंकि ध्यान अवश्य चित्त नहीं है।

गा.१४९० उ. चित्त ध्यान है, ऐसा स्वीकारने में दोष नहीं है क्योंकि एकाग्र चित्त ध्यान है किंतु ध्यान चित्त ~~भी~~ है भी और नहीं भी। दृ. खदिर का पेड़ वृक्ष है किंतु वृक्ष खदिर भी हो सकता

है या खदिर से उत्तरा भी। (ध्यान व्यापक, चित्त व्याप्य)

अन्य आचार्य यहाँ इन दो गाथाओं के साथ पूर्व की गा. 1487 के उत्तरार्द्ध को जोड़कर अन्य प्रकार से शंका करते हैं –

प. गा. 1487 में कहा कि 'अनेकाग्र चित्त ध्यान नहीं है, चित्त ही है' यह बात गलत है क्योंकि इससे ऐसा सिद्ध होता है कि ध्यान तो चित्त है ही किंतु चित्त ध्यान हो या न भी हो, क्योंकि अध्यवसायादि चित्त ध्यान नहीं होता (चित्त व्यापक, ध्यान व्याप्य)।

उ. पूर्ववत्

अव. प्रासंगिक कहा। प्रकृत बात कहते हैं। काउसग्ग का ~~तीसरा~~ दूसरा भेद (गा. 1461-2 Pg. 46 देखें लिंक और गा. 1481-2 Pg. 48 पर) –

गा. 1491 काउसग्ग का दूसरा भेद कहा। मात्र विशेष इतना कि चारों ध्यान से रहित जीव लेश्या से युक्त होता है।

3. खड़ा होकर आर्त-रौद्र ध्यान करे तो द्रव्योत्सृत-भावनिषण्ण।

गा. 1492 4. बैठकर धर्म-शुक्ल ध्यान करे तो द्रव्यनिषण्ण-भावोत्सृत। ग्लान-स्थविरादि ही बैठकर काउसग्ग करते हैं।

गा. 1493 5. बैठकर चारों में से एक भी ध्यान न करे – निषण्ण।

गा. 1494 6. " आर्त-रौद्र ध्यान करे – निषण्ण-निषण्ण।

गा. 1495 7. सोकर धर्म-शुक्ल ध्यान करे – निवन्न-उत्सृत। जो ग्लानादि बैठने में समर्थ न हो वे सोते हैं।

गा. 1496 8. " चारों ध्यान रहित – निवण्ण।

गा. 1497 9. " आर्त-रौद्र ध्यान करे – निवण्ण-निवण्ण।

गा. 1498 जो खड़े होने में समर्थ न हो, वे ही बैठते हैं। जो बैठने में भी समर्थ न हो, वे सोते हैं। यदि उपाश्रय की Height कम हो अथवा गुरु वैयावच्चादि करने वाला हो, ऐसे कारण वाला साधु समर्थ होने पर भी बैठे हुए काउसग्ग करता है।

अव. कायोत्सर्ग शब्द कहा। अध्ययन शब्द पहले ही विस्तार से कहा गया (देखें अव. Pg. 39 पर)

नामनिष्पन्न निक्षेप पूर्ण (देखें अनुयोगद्वार पेज्ज भाग। Pg. , भाग 4 Pg अव.)।
सूत्रात्मक निक्षेप का अवसर है। वह सूत्र होने पर होता है। सूत्र तो सूत्रानुगम में विस्तार से कहेंगे। सूत्र - करेमि भंते... सप्पाणं वोसिरामि' व्याख्या सामायिक अध्ययन में कही। यह सूत्र पुनः कहने का प्रयोजन आगे गा. 1552-6 में कहेंगे। अन्य सूत्र -

सूत्र इच्छामि ठाउं काउस्सग्गं... तस्स मिच्छामि दुक्कडं। (Pg. 55)

मैं काउसग्ग में ~~करन~~ रहने की इच्छा करता हूँ। शेष पद विग्रह, अर्थ वि. प्रतिक्रमण अध्ययन में से जानना। चालना - प्रत्यवस्थान आगे कहेंगे। अन्य सूत्र -

सूत्र तस्सुत्तरीकरणेणं पायच्छित्तकरणेणं विसोहीकरणेणं विसल्लीकरणेणं पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं। अन्नत्थ ऊससिएणं नीससिएणं खासिएणं छीएणं जंभाइएणं उड्डुएणं वायनिसग्गेणं भमलिए पित्तमुच्छाए सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो जाव अरिहंताणं भगवंताणं नमोक्कारेणं न पारेमि ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि।

तस्य = ऊपर प्रस्तुत किए गए, प्रमाद से खंडित और विराधित ऐसे श्रामण्य योग के समूह का।

उत्तरकरण = संस्कार द्वारा ऊपर करना अर्थात् प्रमाद से खंडना और विराधना द्वारा नीचे आए हुए श्रामण्य योग के समूह को ऊपर करना।

प्रायश्चित्तकरण = उत्तरीकरण प्रायश्चित्त करने से ही होता है।

अथवा

सामायिक से लेकर प्रतिक्रमण तक करने योग्य विशुद्धि में मूल करण है और यहाँ प्रायश्चित्त करण रूप उत्तरीकरण है।

विशुद्धि करण = प्रायश्चित्त विशुद्धि से होता है। विशुद्धि यानि अपराध से मलिन आत्मा का प्रक्षाल

विशल्यकरण = विशुद्धि-करण विशल्य करने से होता है। मायादि शल्य रहित करना।

पावाणं...काउसग्गं = पापकर्मों के निर्घातन (नाश) के लिए मैं काउसग्ग करता हूँ।

ठामि = तिष्ठामि, धातु के अनेक अर्थ होने से करोमि।

अर्थ — उस श्रामण्य योग समूह के (खंडित-विराधित) इत्वरीकरण द्वारा, प्रायश्चित्त-विशुद्धि-विशल्य करण द्वारा पाप-कर्मों के नाश के लिए मैं काउसग्ग करता हूँ।

प्र. सर्वथा काय का त्याग करता हूँ? नहीं, उसमें अपवाद —

उच्छ्वास सिवाय जो व्यापार ~~बाकी काया है~~, उस व्यापार से जो व्यापार वाली काया है, उस काया का त्याग (अन्नत्थ ऊससिएणं)। ~~ऐसे ही~~ उच्छ्वास = ऊपर या प्रबल श्वास।

ऐसे ही सभी जगह जानना।

नीचे श्वास (निःश्वास), खाँसी (खासिएणं), छींक सिवाय (छीएणं), उबासी खाना (जंभाइएणं) खुले मुख से जोर से हवा निकलना) जृंभित। डकार सिवाय (उड्डुएणं), अपान से वायु निकलने सिवाय (वायनिसग्गेणं), चक्कर आने सिवाय (भमलीए), पित्त की प्रबलता से थोड़ी मूर्च्छा होती है, उसके सिवाय (पित्तमुच्छाए),

दिखने या न दिखने वाले रोम खड़े होने जैसे सूक्ष्म अंग संचारों सिवाय (सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं) सयोगी जीव को वीर्य की सत्ता होने से कफ का संचार अंदर होता ही रहता है, अतः उन सूक्ष्म कफ के ~~सूक्ष्म~~ संचारों सिवाय (सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं) आँख की पलक झपकना वि सूक्ष्म दृष्टि संचारों सिवाय (सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं)

इस प्रकार के और भी आगारों से (एवमाइएहिं आगारेहिं), आक्रियन्ते इति आगाराः, जो किए जाएँ वे आगार अर्थात् काउसग्ग के सभी प्रकार के अपवाद।

वे आगार होने पर भी इनसे काउसग्ग अभग्न न हो अर्थात् सर्वथा नष्ट न हो (अभग्गो) विराधित न हो अर्थात् देश से भग्न न हो (अविराहिओ)

कितने काल तक — जब तक अरिहंत भगवंतों के नमस्कार द्वारा मैं ~~ब~~ न पारूँ (जाव अरिहंताणं भगवंताणं नमुक्कारेणं न पारेमि) तब तक (ताव) खड़े होने द्वारा (ठाणेणं), मौन से (मोणेणं), शुभ ध्यान से (झाणेणं) मैं मेरी काया को ~~(कायं)~~

(अप्पाणं वोसिरामि) छोड़ता हूँ (वोसिरामि)।
आत्मीयं
कुछ आचार्य 'अप्पाणं' पाठ नहीं बोलते।

~~अर्थात्~~ भावार्थ- हाथ लंबे किए हुए, वाणी को निरोध कर, शुभ ध्यान से युक्त ऐसा मैं नमस्कार पाठ तक स्थान-मौन-ध्यान लेश्तिवाय अन्य क्रियाओं से काया का त्याग करता हूँ। काउसग्ग पूर्ण होने पर नमस्कार नहीं बोलने वाले का काउसग्ग भंग ही होता है।

अब: यह समासार्थ कहा। विस्तरार्थ भाष्यकार कहेंगे। काउसग्ग के प्रयोजन की शंका -

पू. काउसग्ग नहीं करना चाहिए, प्रयोजन रहित होने से, पर्यटन की तरह।

गा 1 (प्रक्षिप्त) उ. प्रयोजन रहितत्व असिद्ध है - (काउसग्ग का प्रयोजन कहते हैं-)
काउसग्ग में खड़े होकर निष्कंपदेह वाले, वचननिरोध वाले, एकाग्रमन वाले मुनि दिवसादि अतिचार को सुखपूर्वक जानते हैं।

गा. 2 (प्रक्षिप्त) ऐसे अतिचार को जानकर, अशठभाव से गुरु को कहकर, प्रायश्चित्त करके आत्मा की शुद्धि करते हैं। भगवान् द्वारा काउसग्ग कहा गया है, इसलिए भी काउसग्ग करना चाहिए।

गा. 1499 तीर्थंकर मोक्षपथ के प्रदर्शक होने से कारण (तीर्थंकर) में कार्य (मोक्षपथ) के उपचार से तीर्थंकर मोक्षपथ कहे जाते हैं। और साधु मोक्षपथ (तीर्थंकर) द्वारा देशित ऐसे काउसग्ग को दिवसादि के अतिचार के परिज्ञान के उपाय रूप जानकर काउसग्ग करते हैं।
अतः काउसग्ग करना चाहिए, प्रयोजनसहित होने से, वैयावृत्त्य की तरह।

अब: सामान्य से दिवसादि के अतिचार के विषय बताते हैं-

गा. 1500 सयणासणण्णपाणे चेइय-जइ-सेज्ज-काय-उच्चारे।
समितीभावणगुत्ती वितहायरणंमि अइयारो॥

• शयन विषयक वितथाचरण- अविधि से ग्रहण करना वि. में अतिचार।
आसन विषयक " " "
अन्नपान " " "

चैत्य विषयक वितथाचरण - अविधि से वंदनया न करने में वि. में अतिचार।
पति " " - यथायोग्य विनय न करने वि. में " "।
शय्या (वसति) " " - अविधि से प्रमार्जना या स्त्यादि से संसक्त वसति में रहना वि.।
काय (मात्र) " " - अस्थंडिल में परठना या स्थंडिल में अप्रत्युपेक्षित वि. भूमि में परठना।
उच्चार (पुरीष) विषयक " - कायिका की तरह।
समिति " " - अविधि से सेवन या असेवन में अतिचार।
भावना - अनित्यादि 12 या 5 महाव्रत की 25 भावना। अविधि से सेवन वि. अतिचार।
गुप्ति Same as समिति।

अब. अब काउसग्ग में रहे मुनि की क्रिया बताते हैं -

गा.1501 सुबह के मुहपत्ति पडिलेहन से लेकर काउसग्ग तक दैवसिक अतिचारों को देखे और ये इतने दोष आलोचनीय हैं ऐसे देखना समाप्त कर हृदय में स्थापित करे।

गा.1502 हृदय में दोषों को क्रम से धारण करे। 2 क्रम होते हैं - ① प्रतिसेवनानुलोम्य = जिस क्रम से सेवन किया हो ② आलोचनानुलोम्य = प्रथम लघु, फिर गुरु दोष। ऐसे दोषों को क्रम में जमाकर जब तक गुरु काउसग्ग न पारे, तब तक श्वास को सूक्ष्म कर मुनि धर्म या शुक्ल ध्यान करे।

[सुबह का मुहपत्ति पडिलेहन यानि पडिलेहन शुरू होने से लेकर काउसग्ग यानि शाम के प्रतिक्रमण में अतिचार के काउसग्ग तक]

गा.1503 दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक प्रत्येक प्रतिक्रमण में तुगम हैं - (प्रकार)

1. सामायिक करके काउसग्ग - करेमि भंते ... अतिचार की गाथा का काउसग्ग
2. " " प्रतिक्रमण - ... पगामसिज्जाए
3. " " पुनः काउसग्ग - ... 2 लोगस्स वि. काउसग्ग।

यह तीर्थ दिन में शुरू होने से और दिन प्रधान होने से 5 प्रतिक्रमण में दिवा दैवसिक प्रथम रखा है। (पाक्षिक वि. 3 प्रतिक्रमण दिन में होने से दिन की प्रधानता है - चूर्णि)

गा.1504 प्र. पहले सामायिक कर कायोत्सर्ग, फिर सामायिक का प्रतिक्रमण किया तो तीसरी बार में पुनः सामायिक क्यों? (यह चालना है)

गा.1505 उ. समभाव में रहे हुए को ही भाव प्रतिक्रमण होता है, अन्यथा नहीं। इसलिए समभाव यानि राग-द्वेष के मध्य में रही आत्मा वाला शिष्य के अतिचार जानकर के लिए कायोत्सर्ग कर गुरु को अतिचार कहकर, प्रायश्चित्त लेकर समभाव पूर्वक ही प्रतिक्रमण करता है अर्थात् अतिचारों से पीछे हटता है। ऐसे ही समभाव में रहे हुए की ही चारित्र शुद्धि होती है इसलिए तीसरी बार सामायिक की जाती है।

गा.1506 सज्झायज्झाणतवओसहेसु उवएसथुइपयाणेसु। संतगुणकित्तणेसु अ न हुंति पुणरुत्तदोसा उ॥

स्वाध्याय-ध्यान-तप-औषध-उपदेश-स्तुति-दान-सद्गुणों के कीर्तन में पुनरुक्त दोष नहीं होते।

अव. 'जो मे देवसिओ अइयारो..' सूत्र पहले कहा होने से 'मिच्छामि दुक्कडं' पद की व्याख्या - गा.1507-8 सामायिक अध्ययन गा.686-7 में कही।

अव. 'तस्सुत्तरीकरणेणं' पद की व्याख्या -

गा.1509 खंडित (सर्वथा भग्न) और विराधित (देश भग्न) ऐसे उत्तर गुण सहित मूल गुणों का उत्तर-करण यानि आलोचना वि. से पुनः संस्करण किया जाता है, जैसे - खंडित-विराधित गाड़ी-चक्र-घर का क्रमशः वि. द्वारा उत्तरकरण किया जाता है। गाड़ी में पहिए, रथ के चक्र में आरे और घर में सुधारे वि. द्वारा उत्तर करण किया जाता है।

अव. 'प्रायश्चित्तकरण' पद -

गा.1510 ① पापं छिनत्ति इति पापच्छित्। प्राकृत में 'पायच्छित्त' होगा, जिससे पाप का नाश हो।

② प्रायशो चित्तं शोधयति, जीव की प्रायः शुद्धि करने वाला अर्थात् कर्म से मलिन जीव को मलिन करने वाला।

③ प्रायः चित्तं स्वेन स्वरूपेण अस्मिन् सति ⇒ यह होने पर प्रायः चित्त स्वयं के स्वरूप वाला हो
अर्थात् जिससे चित्त-जीव स्वस्वरूप वाला हो। जीव स्वस्वरूप वाला संवरादि से होता
है किंतु प्रायः करके (बहुलता से) प्रायश्चित्त से होता है।

अव. 'विशोधिकरण' पद - 'विशल्यकरण' पद →

गा. 1511 शुद्धि और शल्य के भेद - द्रव्य, भाव।
द्रव्य शुद्धि = वस्त्रादि की उष (खार विशेष) वि. द्वारा।
भाव शुद्धि = प्रायश्चित्त वि. से आत्मा की।
द्रव्य शल्य = काँटे, बाण का अग्रभाग (शिल्पीमुख = बाण, फल = अग्रभाग)
भाव शल्य = माया वि.।
पावाणं कम्माणं = ज्ञानावरणीयादि सभी पाप कर्म हैं, जिससे जीव को ५गति रूप संसार
में भटकना पड़ता है। जली हुई रस्सी जैसे थोड़े भी भवोपग्राही अघाति कर्मों से
केवली को भी मुक्ति नहीं मिलती है।

अव. 'अन्नत्थ' सूत्र के पदों की व्याख्या -

गा. 1512 ऊससिएणं-नीससिएणं ⇒ काउसग्ग में रहे साधु श्वास लेने का निरोध नहीं करते
क्योंकि श्वास रोके तो मृत्यु होती है। सूक्ष्म काउसग्ग और चेष्टा काउसग्ग, दोनों
में नहीं रोकते। काउसग्ग में श्वास छोड़ना हो तो जयणा से धीरे-धीरे छोड़े, जिससे
जीवों का घात न हो।

गा. 1513 कासित (खाँसी) - क्षुत (छींक) - जृम्भित (उबासी) ⇒ काउसग्ग में खाँसी वि. भी जयणा से किए जाते हैं, जिससे
निकलने वाली हवा बाह्य वायु का शस्त्र न बने क्योंकि खाँसी वि. की हवा बाह्य वायु
की अपेक्षा बहुत गर्म होती है।

प्र. यदि खाँसी वि. का निरोध ही कर दें तो?
उ. निरोध करने पर असमाधि होती है, मरण की भी संभावना है।

खाँसने वि. की हवा या कफ से मच्छर वि. मर न जाएँ अथवा उबासी लेने में मुख में घुस न जाएँ इसलिए हस्त का अग्रभाग मुख पर रखा जाता है, यह जयणा है।

गा. 514 प्र. निश्वास की व्याख्या क्यों नहीं करते? उ. वह उच्छ्वास में ही तुल्य योग-क्षेम वाला होने से।

उद्गारित = वातनिसर्ग ⇒ शब्द की जयणा करना चाहिए अर्थात् जोर से आवाज न हो ऐसे डकार वि. करना चाहिए। इनका निरोध नहीं करते, अन्यथा असमाधि होती है। डकार आए तब मुँह पर हाथ रखना।

भ्रमली - पित्तमूर्च्छा ⇒ अचानक गिरने से आत्मविराधना न हो, अतः बैठ जाना चाहिए।

गा. 515 सूक्ष्म अंग खेल संचार ⇒ वीर्य और योग के कारण सूक्ष्म और बादर ~~संचार~~ संचार देह में अवश्य होते हैं। वीर्य और योग से ही संचार होते हैं, केवल वीर्य से नहीं। इसलिए संचार देह होने पर ही होते हैं, अदेह को नहीं। जै. बाहर रोमांच वि., अंदर सूक्ष्म कफ - हवा वि. का।

गा. 516 सूक्ष्म दृष्टि संचार ⇒ आँख देखने में चंचल होती है, दर्शन की लालसा वाली होती है। अतः वह, मन की तरह स्थिर करना बहुत दुष्कर है। क्योंकि रूपों द्वारा वह खींची जाती है अथवा स्वभाव से ही चंचल होती है।

गा. 517 इसलिए काउसग्ग करने वाला निमेष (पलक झपकाने) का यत्न न करे क्योंकि यदि निमेष के यत्न में उपयोग रखे तो साधु इच्छित ध्यान नहीं कर सकता। महासत्त्व वाले तो एकरात्रिकी प्रतिमा को स्वीकार कर पूरी रात पलक झपकाए बिना स्थिर आँख से ध्यान करते हैं।

गा. 518 एवमादि आगार ⇒ ① ~~यदि~~ जब उच्चार स्पर्श तब सोड़ने के लिए कपड़े लेने पर भी काउसग्ग भंग नहीं।

② बिल्ली - चूहे वि. आगे से निकले तो आड़ बचाने के लिए आगे खिसकने पर भी ~~काउस्स~~ काउसग्ग भंग नहीं।

③ चोर - राजा वि. का क्षोभ हो तो 'नमो अरिहंताणं' बोले या बोले बिना काउसग्ग पारने पर भी भंग नहीं।

④ स्वयं या दूसरे को साँप काटने पर बीच में ही पारने पर भंग नहीं।

प्र. इन आगारों में 'नमो अरिहंताणं' बोलकर ही काउसग्ग पारे तो भंग ही ~~नहीं~~

नहीं होगा। ~~अन्तः का~~

टि. नमस्कार बोलने का नियम सामान्य से कहा है किंतु काउसग्ग पारने का परिमाण वहाँ तक नहीं कहा है। जो काउसग्ग जितने परिमाण का है, उसके बाद पारने में नमस्कार न बोले तो भंग। समाप्त न होने के पहले नमस्कार बोलकर पारे तो भी भंग। ऐसा भंग इन आगारों से नहीं होता है।

अब: काउसग्ग की सामान्य विधि-

गा.1519 उपाश्रय के अंदर 6, बाहर 6, कुल 12 भूमि मात्रु के लिए; ऐसे ही 12 भूमि उच्चार के लिए; कुल 24 स्थंडिल भूमि साधु सूर्य सहित दिन होने पर ही देखे।
इन भूमियों का जघन्य प्रमाण - तिर्च्छा 1 हाथ, नीचे चक्षुंगुल तक अचित्त।
उत्कृष्ट " - " 12 योजन।
3 कालभूमि - कालमंडल नामक भूमि देखना।
ये और अन्य श्रमण योग कालवेला में मुनि करते हैं; तब तक प्रायः सूर्यास्त हो ही जाता है। तब सभी काउसग्ग में रहे। यह सामान्य से कहा बाकी तो भूमि प्रत्युपेक्षण वि. कार्य जिसके जब पूर्ण हो तब वह सामायिक कर काउसग्ग में रहे।

गा.1520 यह विधि गुरु को व्याघात होने पर जानना। यदि व्याघात न हो तो सब गुरु के साथ प्रतिक्रमण करे। यदि व्याघात हो तो गुरु बाद में आकर काउसग्ग करते हैं।

गा.1521 गुरु न आए तब तक सब साधु यथाशक्ति काउसग्ग में सूत्रार्थ का स्मरण करे। जब गुरु मांडली में आकर सामायिक सूत्र बोले, तब सभी मन में दैवसिक अतिचारों को विचारे।
अन्य मत - गुरु आए तब सब मन में सामायिक सूत्र बोलकर अतिचार विचारे।

गा.1522 जिसकी काउसग्ग में खड़े रहने की शक्ति नहीं है, वो वात-वृद्ध-ग्लान-श्रान्त विकथादि रहित होकर सूत्रार्थ का स्मरण करे (बैठे-बैठे)।

गा.1523-4 गुरु को गोचरी-पडिलेहन वि. चेष्टा न होने से वे जब तक अतिचार बार सोचते हैं, तब तक

शेष साधु एक बार सोचते हैं अथवा साधुओं की बहुत चेष्टाओं को जानकर अल्पचेष्टा वाले गुरु उचित समय में काउस्सग्ग पारते हैं।

गा.1525 काउस्सग्ग पूर्ण होने पर 'नमो अरिहंताणं' बोलकर पारे। फिर जिनके द्वारा यह तीर्थ कहा गया, ऐसे ऋषभादि तीर्थंकरों की चतुर्विंशति स्तव से उत्कीर्तन करे अर्थात् लोगस्स फिर गुरु को वंदन करने की इच्छा वाले 17 संडासे का प्रतिलेखन कर बैठे। फिर मुहपत्ति बोले। पडिलेहन कर शीर्ष सहित ऊपर की काया की प्रमार्जना करे। प्रमार्जना कर उत्कृष्ट विनय से त्रिकरण से शुद्ध वंदन करे।

वंदनकर दोनों हाथ में रजोहरण ग्रहणकर, काया को अहविनत झुकाकर काउस्सग्ग में सोचे हुए दोषों को संयत भाषा में रत्नाधिक के क्रम से वर्धमान संवेग वाले और भय मुक्त साधु स्वयं की विशुद्धि के लिए गुरु को कहे।

कहा गया है - पुनः दोष न करने के परिणाम रूप विनय से संवेग को प्राप्त कर आचार्य के पास जाकर सुविहित साधु स्वयं के दोष कहे, 3 जो दोष कहना भूल गए हो उन्हें याद कराए। पाप करने वाला भी मनुष्य गुरु के पास आलोचना और निंदा कर हल्का होता है, जैसे भार वहन करने वाला भार उतारने के बाद। 2। आलोचना करते हुए उत्पन्न या अनुत्पन्न माया को आलोचना-निंदा-गर्हा से तुरंत ही मारना चाहिए, जिससे वह वापस न हो। 3। मार्ग को जानने वाले गुरु जो प्रायश्चित्त दे, उसे अनवस्था के प्रसंग से डरे साधु पूर्ण करे। 4।

दोष गुरु को कहकर, प्रायश्चित्त लेकर, सामायिक पूर्वक समभाव में रहकर प्रतिक्रमण करे अनवस्था से डरे हुए साधु उपयोग पूर्वक श्रमणसूत्र बोले।

अनवस्था में तिल हारक दृष्टांत - एक बच्चे को माँ ने तेल की मालिश की × वह खेलते-खेलते एक तिल के ढेर पर पहुँच गया × बच्चा होने से किसी ने नहीं रोका × तेल से तिल चिपक गए × घर गया तब माता ने तिल ले लिए × तिल के लोभ से माता रोज उसे तेल लगाकर भेजने लगी × एक दिन माता ने ही उससे तिल की चोरी करवाई × धीरे-धीरे बड़ा चोर बना × एक बार सैनिकों ने पकड़कर मार डाला × ×

(प्रतिक्रमण पूर्ण होने का निवेदन)

फिर प्रतिक्रमण के बाद क्षमापना और प्रतिक्रमण के निवेदन के लिए वंदन करते हैं।
फिर आचार्यादि की आशातना से पीछे हटने के लिए क्षमापना करते हैं। कहा गया है - आचार्य-उपाध्याय-शिष्य-साधर्मिक-कुल-गण विषयक मेरे जो कोई कषाय हैं, उन सभी की त्रिविध (मन-वचन-काया) से मैं क्षमा माँगता हूँ। प्रस्तक पर अंजलि कर भगवान् ऐसे सर्व श्रमण संघ की क्षमा माँगकर सभी को मैं भी क्षमा देता हूँ। भाव से स्वयं के मन को धर्म में निहित करने वाला मैं पूरी जीवराशि की क्षमा माँगकर मैं भी सबको क्षमा देता हूँ।
इस प्रकार आचार्यादि की क्षमा माँगकर अनाभोगादि कारण से किसी अतिचार की आलोचना या प्रतिक्रमण बराबर न हुआ हो तो पुनः चारित्र विशुद्धि के लिए काउसग्ग करते हैं।

गा.1526 चारित्राचार की शुद्धि के लिए यहाँ 100 श्वासोश्वास का काउसग्ग होता है।
फिर नमस्कार से पारकर 'चारित्र की विशुद्धि हुई, अब दर्शन शुद्धि हो' इस प्रकार दर्शन शुद्धि के लिए शुद्ध देशक ऐसे तीर्थंकरों के नाम का उत्कीर्तन करते हैं 'लोगस्स उज्जोअगरे' बोलते हैं।

अब चतुर्विंशतिस्तव बोलकर दर्शन विशुद्धि के लिए काउसग्ग करने की इच्छावाले साधु यह सूत्र बोलते हैं -

सूत्र सव्वलोए अरिहंतचेइयाणं करेमि काउस्सग्गं वंदणवत्तियाए पूअणवत्तियाए सक्कार-वत्तियाए सम्माणवत्तियाए बोहिलाभवत्तियाए निरुवसग्गवत्तियाए सद्धाए मेहाए धिईए धारणाए अणुप्पेहाए वड्ढमाणीए ठामि काउस्सग्गं।
सभी लोक में रहे अरिहंत चैत्यों के वंदनादि के लिए काउसग्ग करता हूँ।
लोक 3 भाग में है। सभी जगह अरिहंत के चैत्य हैं। अधोलोक में चमरादि देव के भवनों में, तिर्यक् तिर्च्छा लोक में द्वीप-पर्वत-ज्योतिष् विमानों में, ऊर्ध्व लोक में सौधर्मादि विमानों में चैत्य हैं।

चित्तं तस्य भावे कर्मणि वा ष्यञ् = चित्त यानि मन, वर्णदृढ वि. सूत्रों से ष्यञ् प्रत्यय। अरिहंत की प्रतिमा प्रशस्त-समाधि युक्त चित्त की उत्पायक होने से अरिहंत का चैत्य कही जाती है।

प्र. अरिहंतचैत्यों की की षष्ठी विभक्ति का संबंध कायोत्सर्ग के साथ है। अर्थात् अरिहंत-चैत्यों की काया का त्याग करता हूँ, क्या ऐसा अर्थ है?

उ. नहीं, षष्ठी से निर्दिष्ट वह पद 2 पद छोड़कर मंडूक प्लुति न्याय से 'वंदन प्रत्यय' इत्यादि पदों से जोड़ा जाता है। सर्व होता है - ~~वंदन वि. के लिए~~ अर्हच्चैत्यों के वंदन वि. के लिए मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

वंदन = अभिवादन, प्रशस्त मन-वचन-काया की प्रवृत्ति।

पूजन = गंध, माल्यादि से पूजा।

सत्कार = श्रेष्ठ वस्त्र-साभरण आदि से पूजा।

सन्मान = स्तुति वि. से गुणगान करना।

बोधिलाभ = जिन-प्रणीत धर्म की प्राप्ति।

प्र. पूजन-सत्कार के लिए कायोत्सर्ग क्यों करते हैं तो वे ही क्यों नहीं करते? उ. वे द्रव्यस्तव होने से प्रधान हैं। (प्रा.गा. 193 वि. देखना)

प्र. बोधि-लाभ किसलिए? - उ. निरुपसर्ग = मोक्ष के लिए।

श्रद्धादि से रहित कायोत्सर्ग करने वाले को भी इच्छित फल की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए 'सद्धाए...'।

श्रद्धा से = वत्याभियोग वि. से नहीं किंतु श्रद्धा - स्वयं की इच्छा से मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

मेधा = जडता से नहीं किंतु पटुता से (अन्य मत- प्रपंचादि पूर्वक, असंबद्धता से नहीं यानि जैसे-तैसे नहीं)

धृति = राग-द्वेष की आकुलता से नहीं, मन की एकाग्रता से।

धारणा = अर्हद्गुणों की स्मृति से, उन्हें भूलकर नहीं।

अनुप्रेक्षा = अर्हद् गुणों को बार-बार अतिच्युतिरूप विचार करने द्वारा।
वर्द्धमान = हर पद से जोड़ना, बढ़ती ऐसी श्रद्धा से, बढ़ती प्रेधा से ...।
ऐसे मैं काउस्सग्ग करता हूँ (ठामि काउस्सग्गं)।

प्र. पहले ही कहा 'करेमि काउस्सग्गं'। यहाँ वापस 'ठामि काउस्सग्गं' क्यों कहा?
उ. पहले क्रिया की ओर अभिमुखता कही थी। वहाँ 'सत्तमीए सद्दबद्धा' ३-५-१ सूत्र से वर्तमाना विभक्ति की। यहाँ क्रिया-काल-निष्ठाकाल के कथंचित् अभेद से 'मैं काउस्सग्ग में हूँ' (ठामि) ऐसा कहा।

अन्नत्थ सूत्र पढ़कर २५-श्वास का काउस्सग्ग करे।

[भावार्थ - सभी लोक में रहे अरिहंत के चैत्यों (प्रतिमाओं) के वंदन के लिए, पूजन के लिए, सत्कार के लिए, सन्मान के लिए, बोधिलाभ के लिए, मोक्ष के लिए मैं काउस्सग्ग करता हूँ। बढ़ती ऐसी श्रद्धा-मेधा-धृति-धारणा-~~अनु~~ अनुप्रेक्षा से मैं काउस्सग्ग में रहता हूँ।]

~~अब~~. यह तीसरा काउस्सग्ग है। पहला अतिचार का, दूसरा चारित्रशुद्धि, तीसरा दर्शन शुद्धि का।

अब. नमस्कार से पारकर श्रुतज्ञान की वृद्धि और अतिचार की शुद्धि के लिए भगवत् ऐसे श्रुतधर्म की उत्कृष्ट भक्ति से उसके प्ररूपकों नमस्कार पूर्वक स्तुति-कीर्तन करते हैं-

सूत्र पुक्खरवर दीवड्ढे धायइसंडे य जंबुदीवे य।
भरहेरवयविदेहे धम्माइगरे नमंसामि ॥1॥

तमतिमिरपडलविद्धंसणस्स सुरगणनरिंदमहिअस्स।
सीमाधरस्स वंदे पप्फोडियमोहजालस्स॥२॥
जाईजरामरणसोगपणासणस्स कल्याणपुक्खलविसालसुहावहस्स।
को देवदानवनरिंदगणच्चिअस्स धम्मस्स सारमुवलब्भ करे पमायं?॥३॥
सिद्धे भो! पयओ णमो जिणमए नंदी सया संजमे
देवं नागसुवण्णकिन्नरगणस्सब्भूअभावच्चिए।
लोगो जत्थ पइट्ठिओ जगमिणं तेलुक्कमच्चासुरं
धम्मो वड्ढउ सासओ विजयउ धम्मुत्तरं वड्ढउ॥४॥

पुक्कर यानि कमल्य, कमलों से प्रधान द्वीप पुष्करवर। इसका आधा भाग मानुषोत्तर पर्वत के पहले वाला। धातकी वृक्ष (वर) के खंड यानि वन हैं जिसमें वह धातकीखंड। जंबु वृक्ष से उपलक्षित जंबुद्वीप। वर्ष क्षेत्र की प्रधानता को मानकर पश्चानुपूर्वी क्रम रखा है। इन २½ द्वीपों में जो भरत-ऐरावत-विदेह क्षेत्र, उनमें धर्म की आदिकरने वाले तीर्थंकरों को मैं नमस्कार करता हूँ। धर्म २ प्र.-श्रुत, चारित्र। यहाँ श्रुत धर्म का अधिकार है। इस गाथा से श्रुतधर्म की आदि करने वाले तीर्थंकरों की स्तुति की।

अब श्रुतधर्म की स्तुति- तम यानि अज्ञान, अज्ञान रूप अंधकार (तिमिर) अथवा तम यानि स्पृष्ट-बद्ध-निधत्त ज्ञानावरणीय कर्म, तिमिर यानि निकाचित ज्ञानावरणीय कर्म। ऐसे अंधकार या कर्म के पटल को नाश करने वाला। तथा देवों के समूह- इंद्र द्वारा पूजित (सुरगणनरिंद महिअस्स)। सीमा यानि मर्यादा में को अथवा मर्यादा में जो धारण करने वाला (सीमाधर), आगम वाले ही मर्यादा को धारण करते हैं। प्रकर्ष से मोहजाल को तोड़ने वाला (पप्फोडिय...) क्योंकि श्रुतधर्म होने पर विवेकी जीव का मोहजाल टूट ही जाता है। ऐसे श्रुतधर्म को मैं वंदन करता हूँ (षष्ठी द्वितीया के अर्थ में है)।

ऐसे श्रुतधर्म को वंदनकर, उसी उसकी गुण बताकर प्रमाद न करने की प्रेरणा -
जाति यानि जन्म, जरा - वय की हानि, मरण - प्राण त्याग, शोक = मानसिक दुःख।
ऐसे जाति - जरा - मरण - शोक को नाश करने वाला क्योंकि श्रुत धर्म में कहे अनुष्ठान से जात्यादि नष्ट होते हैं। इस पद से श्रुत का अनर्थप्रतिघातित्व गुण कहा। (जाईजरामरणसोगपणासणस्स)
कल्य = आरोग्य, कल्यं अणति इति कल्याणं, कल्यं शब्दयति, कल्य यानि आरोग्य (सुख, मोक्ष) को बुलाने वाला। पुष्कल = संपूर्ण, अल्प नहीं। विशाल = विस्तीर्ण। संपूर्ण आरोग्य और विस्तीर्ण सुख को लाने वाला क्योंकि श्रुतधर्मोक्त अनुष्ठान से मोक्ष सुख प्राप्त होता ही है। इस पद से श्रुत का विशिष्टार्थप्रसाधकत्व गुण कहा। (कल्लाणपुक्खलविसालसुहावहस्स)
कौन प्राणी (को)। देव - दानव - राजा के समूह से अर्चित ऐसे श्रुत का सार यानि सामर्थ्य प्राप्त कर - जानकर प्रमाद करे (देवदानव ... ?)। अर्थात् श्रुतधर्म रूप में कहे अनुष्ठान रूप चारित्र धर्म में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

प्र. 'सुरगणनरिंदगणाच्चिअस्स' कहने के बाद 'देवदानवनरिंदगणाच्चिअस्स' कहने की क्या जरूर ? उ. पूर्व में कहे हुए का ही यहाँ उपसंहार कहा है।
जिनमत सिद्ध - प्रतिष्ठित - प्रख्यात होने पर (सिद्धे)। भो! - अतिशयी अतिशय ज्ञानियों का आमंत्रण है अर्थात् हे विशिष्ट ज्ञानियों आप देखो। मैं यथाशक्ति प्रयत यानि प्रयत्न वाला हुआ हूँ (पयओ)। इस प्रकार परसाक्षिक प्रयत्न वाला होकर पुनः नमस्कार करते हैं - (नमो जिनमए) 'अर्थाद् विभक्तिपरिणामः' न्याय से 'जिनमताय' करना। जिनमत को नमस्कार हो। ये जिनमत होने पर सदा संयम में नंदि = समृद्धि बढ़ती है क्योंकि कहा गया है - पढमं नाणं तओ दया। कैसे संयम में समृद्धि बढ़ती है ? - देव - नाग - सुवर्ण - किन्नरों के समूह द्वारा अर्चित ऐसे संयम में। कैसे जिनमत को नमस्कार ? - जिसके द्वारा देखा जाए (लोक्यतेऽनेन) वह लोक

अर्थात् ज्ञान, वह ज्ञान जिसमें प्रतिष्ठित है और पूरा लोक-जगत् जिसमें ज्ञेय रूप है। कुछ लोक दर्शन मात्र मनुष्य लोक को ही जगत् मानते हैं, इसलि कहा- त्रैलोक्य = तीनों लोक जगत् है। वह आधार है, मनुष्य-असुर-सुर आधेय है। ऐसा श्रुतधर्म बढ़े, द्रव्यास्तिक नय से नित्य ऐसा श्रुतधर्म बढ़े। कुछ आ. श्रुतधर्म के शाश्वत को क्रिया विशेषण कहते हैं- शाश्वत रूप से श्रुत बढ़े। विजय से यानि कर्मजय और परप्रवादी के विजय से श्रुत बढ़े। तथा धर्मोत्तर यानि चारित्र धर्म बढ़े। मोक्षार्थी को रोज ज्ञानवृद्धि करना चाहिए, यह बताने यह लिखा।

सुयस्स भगवओ... अन्नत्थ... पूर्ववत्।

यह सूत्र बोलकर 25 श्वास का काउस्सग्ग करते हैं।

[भावार्थ- अर्ध पुष्करवर-धातकीखंड-जंबूद्वीप इन ढाई द्वीप में भरत-ऐरावत-विदेह क्षेत्र में धर्म की आदि करने वाले को मैं नमस्कार करता हूँ।1
अज्ञान रूप अंधकार के पडल का नाश करने वाले, देवों के समूह और राजाओं से पूजित, सीमा-मर्यादा में रखने वाले और मोहजाल को तोड़ने वाले श्रुतधर्म को मैं वंदन करता हूँ।2
जन्म-जरा-मरण-शोक का नाश करने वाले, संपूर्ण कल्याण और विशाल सुख को लाने वाले और देव-दानव-नरेंद्र के गण से पूजित ऐसे श्रुतधर्म के सार को प्राप्त कर कौन चारित्र में प्रमाद करे?3
हे विशिष्ट ज्ञानियों! श्रुतधर्म प्रख्यात होने पर मैं यत्नवान् हुआ हूँ। देव-नाग-सुवर्ण किन्नरों के द्वारा सद्भाव से पूजित, ऐसे संयम में जिससे समृद्धि बढ़ रही है, जिसमें ज्ञान और तीनों लोक = मनुष्य-देव-असुर सहित यह लोक ज्ञेय रूप में प्रतिष्ठित है ऐसे जिनमत को नमस्कार करता हूँ।

विजय से

ऐसा शाश्वत श्रुतधर्म बढ़े, चारित्र धर्म भी बढ़े।]

अब नमस्कार से पारकर चारित्र-दर्शन-श्रुत के अतिचारों को शुद्ध किए हुए साधु मंगल के लिए चारित्र-दर्शन-श्रुत के देशक सिद्धों की स्तुति करते हैं -

सूत्र सिद्धाणं बुद्धाणं पारगयाणं परंपरगयाणं।
लोयग्गमुवगयाणं नमो सया सव्वसिद्धाणं ॥1॥
जो देवाणवि देवो जं देवा पंजली नमंसंति।
तं देवदेवमहिअं सिरसा वंदे महावीरं ॥2॥
इक्कोऽवि नमुक्कारो जिणवरवसहस्स वद्धमाणस्स।
संसारसागराओ तारेइ नरं व नारिं वा ॥3॥
उज्जिंतसेलसिहरे दिक्खा नाणं निसीहिआ जस्स।
तं धम्मचक्कवट्टिं अरिट्ठनेमिं नमंसामि ॥4॥
चत्तारि अट्ठ दस दोय वंदिआ जिणवरा चउव्वीसं।
परमट्ठनिट्ठिअट्ठा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥5॥

जिनके कर्म नष्ट हो गए हैं, वे सिद्ध। ये सामान्य से विद्यासिद्ध भी होते हैं, इसलिए कहा - बुद्ध, जिन्होंने सभी तत्त्वों को अविपरीत जाना है वे बुद्ध। कोई ऐसा मानते हैं कि ऐसे सिद्ध भी स्वयं के तीर्थ की उन्नति के लिए यहाँ आते हैं, उनके खंडन के लिए कहा - पारगत, संसार और प्रयोजनों के समूह के पार पहुँचे हुए। कोई ऐसा मानते हैं कि ये सिद्ध भी किसी एक अनादिसिद्ध रूप जगत्पति की इच्छा से सिद्ध हुए हैं, उनके खंडन के लिए - परंपरागत, एक द्वारा कहे गए अर्थ रूप आगम से दूसरा अन्य प्रवृत्त हुआ, अन्य द्वारा कहे अर्थ से अन्य प्रवृत्त हुआ, ऐसे अनेक जीवों के उपदेश से अनेक जीव मोक्ष में गए हैं, किसी एक जगत्पति की इच्छा से नहीं।

प्र. सबसे पहला जो सिद्ध हुआ, वह किसके उपदेश से मोक्ष में गया? उ. सिद्ध अनादि

होने से 'प्रथम सिद्ध' कहना घटता नहीं है।
अथवा परंपरा यानि कर्म के क्षयोपशम से दर्शन, दर्शन से ज्ञान, ज्ञान से चारित्र, ऐसी परंपरा से मोक्ष में गए। इन्हें भी कोई पूरे लोक में फैले हुए मानते हैं, उनके खंडन के लिए- लोकाग्र में पहुँचे हुए।

9. सभी कर्म से मुक्त जीव की लोकाग्र तक गति कैसे होती है या होती है तो हमेशा क्यों नहीं होती? उ. पूर्व प्रयोग से, दंडादि द्वारा चक्र की गति की तरह।
तीर्थसिद्ध वि. सभी सिद्धों को हमेशा नमस्कार हो। अथवा सर्व साध्य सिद्ध हो गया है, जिन्हें वे सर्वसिद्ध।
ऐसे सामान्य से सभी सिद्धों को नमस्कार कर आसन्न उपकारी होने से वर्तमान तीर्थ के अधिपति महावीर वर्धमान स्वामी की स्तुति करते हैं- जो भगवान् वर्धमान भवनपति वि. देवों के भी पूज्य होने से देव हैं, जिन्हें देव भी हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं और देवों के देव यानि शक्रादि इंद्र द्वारा पूजित ऐसे उन महावीर स्वामी को सिर से मैं वंदन करता हूँ।
स्तुति का फल बताने के लिए कहते हैं- जिनवरों में वृषभ समान ऐसे वर्धमान स्वामी का एक नमस्कार भी नर अथवा नारी को संसार सागर से तार देता है अर्थात सम्यग्दर्शन होने पर उत्कृष्ट भावना से किया गया एक नमस्कार भी वैसे भव्य अध्यवसायों का हेतु बनता है, जैसे अध्यवसाय से श्रेणि को प्राप्त कर जीव संसार से पार उतर जाता है। अतः कारण (नमस्कार) में कार्य (संसार से तारना) के उपचार से ऐसा कहा जाता है, अन्यथा चारित्रादि निष्फल होंगे।
ये तीन स्तुति नियमा बोली जाती है। अन्य 2 गाथा कुछ बोलते हैं, उसमें नियम नहीं है।
[भावार्थ- सिद्ध, बुद्ध, पारगत, परंपरा से मोक्ष में गए हुए और लोकाग्र को प्राप्त ऐसे सभी सिद्धों को सदा नमस्कार हो।1
जो देवों के भी देव हैं, जिन्हें देव भी हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं, देवों के

देव (इंद्र) द्वारा पूजित हैं, उन महावीर स्वामी में सिर से वंदन करता हूँ।2
इ जिनवरों में वृषभ समान महावीर वर्द्धमान स्वामी को किया हुआ एक भी नमस्कार नर अथवा नारी को संसार सागर से तार देता है।3
ऊर्जयंत पर्वत के शिखर पर जिनके दिक्षा-ज्ञान और मोक्ष कल्याणक हैं ऐसे धर्मचक्रवर्ती उन अरिष्टनेमि को मैं नमस्कार करता हूँ।4
4-8-10-2 ऐसे (अष्टापद पर्वत पर) 24 जिनवर वंदन किए गए। परमार्थ से निष्ठित अर्थ वाले सिद्ध मुझे सिद्धि दो।5]

पुनः संडासे प्रमार्जकर बैठते हैं, मुहपत्ति पडिलेहन कर मस्तक सहित ऊपर की काया की प्रमार्जना कर आचार्य को साधु वंदन करते हैं। (गा.1526 का अर्थ पूर्ण हुआ, देखें Pg.60)

द्रव. प्र. ये वंदन क्यों करते हैं-
गा.1527 जैसे राजा द्वारा आज्ञा दिए हुए पुरुष प्रणाम कर जाते हैं। कार्य अच्छी तरह कर पुनः प्रणाम पूर्वक निवेदन करते हैं। वैसे ही साधु भी गुरुद्वारा समादिष्ट होकर वंदन पूर्वक चारित्रादि की विशुद्धि कर पुनः वंदन कर गुरु को निवेदन करते हैं- हे भगवन्! आत्म विशुद्धि कारक कार्य किया। वंदन कर पुनः उत्कुटुक आसन में बैठकर विनय से हाथ जोड़कर रहते हैं। फिर गुरु स्तुति बोलते हैं, प्रथम स्तुति समाप्त होने पर सभी 3 स्तुति साथ में बोलते हैं क्योंकि यह विनय है कि गुरु के स्तुति बोलने के बाद सबको बोलना चाहिए।
फिर प्रादोषिक (रात्रि संबंधी) कर्तव्य काते हैं। यह दैवसिक प्रतिक्रमण की विधि पूर्ण हुई।
रात्रिक प्रतिक्रमण की विधि- पहले सामायिक कर चारित्र विशुद्धि के लिए 25 श्वास का काउसग्ग करते हैं। नमस्कार से पारकर दर्शनविशुद्धि के लिए चतुर्विंशतिस्तव

बोलकर 25 श्वास का काउसग्ग करते हैं। नमस्कार से पारकर श्रुतज्ञान की शुद्धि के लिए श्रुतज्ञानस्तव बोलते हैं और ज्ञानशुद्धि के लिए ही काउसग्ग करते हैं। इस काउसग्ग में स दैवसिक प्रतिक्रमण की स्तुति से लेकर इस प्रस्तुत काउसग्ग तक के अतिचारों को विचारते हैं।

अव. प्र. प्रथम काउसग्ग में रात्रिक अतिचार क्यों नहीं विचारते? —

गा. 1528 ① निद्रा से अभिभूत होकर अच्छी तरह अतिचार याद न करे।

② ~~घस्स्स्स~~ अंधकार में वंदन करते हुए का परस्पर घट्टन (टकराना) संभव है

③ अंधारे में न दिखने से मंदश्रद्धा वाले (अपरिणत साधु) वंदन न करे,

इन कारणों से सुबह शुरुआत में उ काउसग्ग होते हैं, दैवसिक प्रतिक्रमण की तरह एक नहीं।

गा. 1529-30 रात्रिक प्रतिक्रमण विधि।

अतिचार विचारकर नमस्कार से पारकर सिद्धों की स्तुति करके पूर्वोक्त विधि से वंदन कर आलोचना करते हैं। फिर सामायिक पूर्वक प्रतिक्रमण करते हैं। फिर वंदन पूर्वक खमाते हैं। फिर वंदन कर सामायिक पूर्वक काउसग्ग करते हैं। इस काउसग्ग में सोचते हैं- गुरु द्वारा हम किस योग में नियुक्त किए गए? अतः ऐसा तप करूँ जिससे उस योग की हानि न हो। क्या 6 मास का तप करूँ? समर्थ नहीं हूँ, तो एकदिन न्यून? समर्थ नहीं हूँ... ऐसे ६-५-४-३-२½-२-१-½ मास ... चौथ भक्त- आयंबिल- एगलठाण- एकासन- पुरिमड्ढ- निवि- पोरसी- नवकारसी तक। ऐसे जो तप करने समर्थ हो, उस तप को अशठभाव से हृदय में धारे। फिर वंदन कर गुरु की साक्षी से स्वीकारे अर्थात् पच्चक्खाण करे। सभी नवकारसी वाले एक साथ पच्चक्खाण कर बोसिराए और बैठे। ऐसे ही पोरसी वि. में जाने। फिर उत्तुति पूर्वोक्त रीति से बोले। विशेष- यहाँ कम आवाज से बोलते हैं क्योंकि ~~अ~~ छिपकली वि. जीव ~~ह~~ न

जाए। फिर देव वंदन करते हैं। फिर बहुवेल संदिसाए (आज्ञा माँगे)। फिर रजोहरण का पडिलेहन करे। फिर उपधि की आज्ञा माँगे (संदिसाए) और पडिलेहन करे। फिर वसति का पडिलेहन कर काल का निवेदन करे।

प्रतिक्रमण काल की तुलना करे अर्थात् प्रतिक्रमण ऐसे समय शुरु करे कि उस्तुति पूर्ण होने पर पडिलेहन की वेला हो।

अन्य मत- उस्तुति के बाद तुरंत काल निवेदन करे।

रात्रिक प्रतिक्रमण विधि पूर्ण हुई।

गा.1531 पक्खी प्रतिक्रमण विधि — दैवसिक विधि अनुसार प्रतिक्रमणकर (श्रमण सूत्र बोलकर) गुरु बैठ जाते हैं। तब साधु वंदन कर कहते हैं- इच्छामि खमासमणो! पक्खिय खामणं हे क्षमाश्रमण! हम पाक्षिक क्षमापना इच्छते हैं। यहाँ प्रथम क्षमापना सूत्र-

सूत्र इच्छामि खमासमणो! इच्छं भो अब्भिंतरपक्खियं खामेउं, पन्नरसण्हं दिवसाणं पन्नरसण्हं राईणं जं किंचि अपत्तियं परपत्तियं भत्ते पाणे विणए वेयावच्चे आलावे संलावे उच्चासणे समासणे अंतरभासाए उवरिभासाए जं किंचि मज्झ विणयपरिहीणं सुहुमं वा बायरं वा तुब्भे जाणह अहं न याणामि तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सूत्रार्थ स्पष्ट ही है। विशेष- अंतरभासाए = बोलते हुए आचार्य के बीच में बोलना, उपरिभाषा = आचार्य के बाद वही बात अधिक बोलना।

गा.1531 (इस गाथा में 5 खामणा के 5 गुरु वाक्य हैं)।

यहाँ आ. कहते हैं- अहमवि खामेमि तुब्भे, मैं भी तुम्हें खमाता हूँ। इस प्रकार जघन्य से 3, उत्कृष्ट से सभी की क्षमापना की जाती है।

टीप्पणक यहाँ पाक्षिक खामणा के सूत्रों की व्याख्या वृत्तिकार हरिभद्रसूरि म. ने पूरी नहीं की है। अतः संक्षेप से व्याख्या की जाती है और सूत्र में वाचना की विचित्रता दिखने से सूत्र अक्षर सहित लिखा जाता है- इच्छामि खमासमणो! अब्भुट्ठिओमि ...।

इच्छामि = मैं इच्छा करता हूँ, क्षमा माँगने के लिए इस प्रकार जोड़ना है।

खमासमणो = हे क्षमाश्रमण! ओकारान्त प्राकृत होने से।

अब्भुट्ठिओमि = केवल इच्छा नहीं करता किंतु उपस्थित हुआ हूँ। इस पद से मात्र इच्छा करने को दूर कर क्षमा क्रिया का प्रारंभ कहा है।

अब्भिंतरपक्खियं = पक्ष के अंदर संभवित अतिचार

खामेउं = क्षमा माँगने के लिए।

पन्नरसण्हं...राईणं = 15 दिन और 15 रात्रि में

जंकिंचि = जो कुछ (सामान्य से या सभी)

अपत्तियं = अप्रीति वाला

परपत्तियं = प्रकृष्ट अप्रीति वाला या परप्रत्यय अर्थात् पर हेतु वाला। जो कुछ अप्रीतिकर या प्रकृष्ट अप्रीतिकर आपके विषय में मैंने किया हो, उसका मिच्छामि दुक्कडं (ऐसा संबंध है।)

भत्ते पाणे = भक्त-पान विषयक।

विणए वेयावच्चे = अभ्युत्थानादि रूप विनय और औषध-पथ्य भोजन देने वि. द्वारा सहारे रूप वेयावच्च विषयक।

आलापे = एकबार बोलने में।

संलापे = कथा में बार-बार बोलना।

उच्चासने समासने = ऊँचे आसन या समान आसन पर बैठने विषयक।

अंतरभाषा = बोलते हुए आराध्य (पूज्य) के बीच में बोलना।

उपरि भाषा = पूज्य के बोलने के बाद उससे अधिक बोलना।

जं किंचि = जो कुछ

मज्झ = मेरा

विणयपरिहीणं = विनय से परिहीन अर्थात् शिक्षा से रहित, अनौचित्य हुआ।

(विनयपरिहीन आचरण का ही सामस्त्य अथवा सामान्यरूपता दिखा रहे हैं :—)

सुहुमं वा बायरं वा = सूक्ष्म अथवा बादर। दोनों वाशब्द सूक्ष्म या बादर, दोनों की मिथ्या दुष्कृत देने की विषयता की समानता बताने के अर्थ में है।

तुब्भे जाणह = आप जानते हो।

अहं न याणामि = मूढ़ होने से मैं नहीं जानता हूँ।

तस्स = षष्ठी-सप्तमी के अभेद से इस अप्रीति विषयक और विनय परिहीन विषयक मिच्छा मि दुक्कडं = मेरा दुष्कृत मिथ्या हो। यह स्वयं के दुश्चरित्र के पश्चात्ताप का सूचक अथवा स्वयं के दोष के स्वीकार का सूचक प्रतिक्रमण रूप पारिभाषिक वाक्य है। मैं मिच्छामि दुक्कडं देता हूँ, ऐसा अध्याहार है।

हरिभद्रीय वृत्ति

ऐसे जघन्य से 3, उत्कृष्ट से सभी को खामे। फिर गुरु उठकर रत्नाधिक के क्रम से (जो गुरु से पर्याय में बड़े हो उन्हें) खड़े-खड़े ही खमाते हैं। अन्य साधु भी रत्नाधिक के क्रम से खमाते हैं। फिर सभी साधु वंदन कर कहते हैं - दैवसिक प्रतिक्रमण हुआ, पाक्षिक प्रतिक्रमण कराओ। तब गुरु अथवा गुरु द्वारा आदेश किया हुआ साधु पाक्षिक प्रतिक्रमण (पक्खी सूत्र) बोलता है। शेष यथाशक्ति काउसग्गादि में रहकर धर्मध्यान में रहकर सुनते हैं। बोलने के बाद मूल-उत्तर गुणों से जो खंडना की है, उसके प्रायश्चित के लिए 300 श्वास का काउसग्ग करते हैं अर्थात् 12 लोगस्स कहे जाते हैं। काउसग्ग पारकर प्रगट लोगस्स रूप स्तुति बोलते हैं। फिर बैठकर मुहपत्ति पडिलेहन कर वंदन करते हैं।

मंगल कार्य पूर्ण होने पर जैसे मंगल पाठक राजा का बहुमान करते हैं कि शत्रु को हराने से अखंड बल वाले आपका काल सुंदर पसार हुआ और सभी सुंदर काल उपस्थित हुआ है, ऐसे ही साधु गुरु का बहुमान करने दूसरे खामणा सूत्र से पाक्षिक विनयोपचार को खमाते हैं -

सूत्र

इच्छामि खमासमणो! पियं च मे जं भे हट्ठाणं तुट्ठाणं अप्पायंकाणं

अभग्गजोगाणं सुसीलाणं सुव्वयाणं सायरिय उवज्झायाणं णाणेणं दंसणेणं चरित्तेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणाणं वइसुभेणं मे दिवसो पोसहो पक्खो वतिक्कंतो, अण्णो य मे कल्लाणेणं पज्जुवट्ठिओ सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि।

सूत्रार्थ स्पष्ट ही है। आ. कहते हैं - साधुओं के साथ अर्थात् आपके साथ मेरा पिछला पक्ष अच्छा गया और नया पक्ष शुरु हुआ है।

दीपणक इच्छामि = मैं इच्छा करता हूँ।

खमासमणो = हे क्षमाश्रमण!

किसी भी कारण से कुछ अप्रिय भी इच्छा जाता है - पिअं च मे = मुझे प्रिय है

जं मे = जो आपका

हट्ठाणं = हृष्ट, रोग रहित

तुट्ठाणं = तुष्ट अथवा हर्षातिरेक के प्रतिपादन के लिए एकार्थक ये २ पद लिखें हैं।

~~अथवा~~ अप्पायंकाणं = अल्प रोग वाले अथवा (अल्प शब्द अभाव अर्थ में) घातक रोग से रहित अथवा सामान्य से थोड़े रोग वाले क्योंकि सर्वथा निरोगीपन असंभव है।

अभग्गजोगाणं = अभग्न नहीं है संयम योग जिनके।

सुसीलाणं सुव्वयाणं = सुंदर शील और सुंदर व्रत वाले।

सायरिय उवज्झायाणं = अनुयोगादि आचार्य-उपाध्याय से युक्त।

नाणेणं दंसणेणं चरित्तेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणाणं = ज्ञान से, दर्शन से, चारित्र से, तप से स्वयं को/आत्मा को भावित करते हुए।

वइसुभेन = अत्यंत श्रेयस्कर अथवा ~~एकदम~~ एकदम कम अशुभ रूप से, क्योंकि सभी शुभ असंभव है।

भे = भो! हे भगवंत अथवा आपका (भवतां)

दिवसो = दिन

पोसहो = पौषधो = धर्मपोषक

पक्ष = ८ दिन रूप

वतिक्कंतो = व्यतिक्रांत - पसार हुआ।

अन्नो य मे कल्लाणेणं पज्जुवट्ठिओ = और अन्य पक्ष आपके कल्याण से युक्त उपस्थित है

इस प्रकार मंगल वचन कहकर गुरु को प्रणाम करते हैं -

सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि - प्रसिद्ध है (Pg. 35 पर)

प्र. सिरसा कहने पर भी ~~मत्थ~~ मत्थएण क्यों कहा?

उ. 'मत्थएण वंदामि' शब्द शास्त्र में वंदन अर्थ में ही रूढ/प्रसिद्ध है। इसलिए 'सिरसा' कहकर भी 'मत्थएण' कहना अदुष्ट है। eg. 'एषां वर्त्तीवर्दानां एष गोस्वामी' यहाँ गोस्वामी शब्द स्वामी के पर्यायवाची रूप में लोक में रूढ है।

हरिभद्रीय वृत्ति अव. अब चैत्य वंदना और अन्य साधु-साध्वी वि. ने गुरु को की हुई वंदना का निवेदन करने कहते हैं -

सूत्र इच्छामि खमासमणो! पुव्विं चेइयाइं वंदित्ता नमंसित्ता तुब्भं पायमूले विहरमाणेणं जे केइ बहुदेवसिया साहुणो दिट्ठा समाणा वा वसमाणा वा गामाणुगामं दुइज्जमाणा वा, राइणिया संपुच्छंति ओमराइणिया वंदंति अज्जा वंदंति अज्जियाओ वंदंति सावया वंदंति साविआओ वंदंति अहंपि निस्सल्लो निक्कसाओ तिकट्टु सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि। अहमवि वंदामि चेइयाइं।

स्पष्ट है। विशेष - समाणो (श्रमण) = जंघाबल से हीन क्षेत्र को ७ भाग में बाँटकर विहार करते हैं। वसमाणो (वर्षाश्रमण) = नवकल्प विहारी यानि ऋतुबद्ध काल में ८ मास मासकल्प से विहार करते हैं और वर्षावास में एक जगह रहते हैं, यह ७ कल्प विहार है।

आ. कहते हैं - मैं भी उन्हें मस्तक से वंदन करता हूँ।

टीप्पणक इच्छामि = मैं इच्छा करता हूँ। चैत्य वंदना और साधुवंदना आपको कहने के लिए।

पुव्विं = विहारकाल से पहले।

चेइयाइं = जिनप्रतिमाओं को वंदन कर, स्तुति से नमस्कार कर
(कहाँ) तुब्भाणं पायमूले = आपके चरण के पास अर्थात् आपके विहार करने की इच्छा वाले मेरे द्वारा आपके पास ही विशिष्ट प्रणिधान से प्रतिमा का वंदन किया गया।
विहरमाणेणं = विचरते हुए मेरे द्वारा।
जे केइ = जो कोई।
बहुदेवसिया साहुणो दिट्ठा = बहुत दिन के पर्याय वाले साधु देखे गए
समाणा = स्थिरवास वाले अथवा
वसमाणा = विहार करने वाले
गामाणुगामं दूइज्जमाणा = गाँव से गाँव जाते हुए
(उनमें) रायणिया = भाव रत्न का व्यवहार करने वाले रात्निक यानि आचार्य
संपुच्छंति = मेरे द्वारा वंदन किए जाने पर आपके शरीरादि की कुशल ~~वार्ता~~ वार्ता पूछी।
ओमरायणिया वंदंति = आपसे कम पर्याय वाले वंदन करते हैं और साता पूछते हैं।
अज्जया वंदंति = सामान्य साधु वंदन करते हैं।
अज्जियाओ, साबया, सावियाओ = ऐसे ही साध्वी-श्रावक-श्राविका भी वंदना कराते हैं।
अहंपि निस्सल्लो निक्कसाओ = मैंने भी शल्य रहित, कषाय रहित होकर ... उन्हें वंदन किए।
अहमवि वंदावेमि चेइयाइं = मैं भी उन्हें वंदन करता हूँ।

हरिभद्रीय वृत्ति अव. सूत्र

अब चौथे खामणा सूत्र से शिष्य स्वयं का गुरु को निवेदन करता है –
इच्छामि खमासमणो! उवट्ठिओमि तुब्भाणं संतियं अहाकप्पं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा (रयहरणं वा) अक्खरं वा पयं वा गाहं वा सिलोगं वा (सिलोगद्धं वा) अट्ठं वा हेउं वा पसिणं वा वागरणं वा तुब्भेहिं चिप्पलेण दिण्णं

मए अविणएण पडिच्छियं तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

स्पष्ट है। आ. कहते हैं - आयरियसंतियं, अहंकार के वर्जन के लिए कि इसमें मेरा क्या है?।

टीप्पणक उवट्ठिओऽहं = मात्र इच्छता नहीं हूँ किंतु स्वयं के निवेदन के लिए उपस्थित हुआ हूँ।
तुब्भण्हं संतियं = जो कुछ भी हमें परिभोग्य है, वह आपका है।
अहाकप्पं = कल्प के अनुसार, स्थविर कल्प के उचित।
वत्थं वा... = वस्त्र, पात्र, रजोहरण, अर्थ, प्रश्न, व्याकरण (प्रश्न का उत्तर), वि.
(उनके ग्रहण में होने वाले अविनय की क्षमा माँगते हैं -)
तुब्भेहिं चियत्तेण दिन्नं = आपने तो प्रीति से दिया
मए अविणएण पडिच्छियं = मेरे द्वारा अविनय से इच्छा गया।
तस्स मिच्छामि दुक्कडं = पूर्ववत्।

हरिभद्रीय वृत्ति अब. शिष्य गुरु की अनुशास्ति का पाँचवें खामणा सूत्र से बहुमान करते हैं -

सूत्र इच्छामि खमासमणो! कयाइं च मे कितिकम्माइं आयारमंतरे विणयमंतरे सेहाविओ संगहिओ उवगहिओ सारिओ वारिओ चोइओ पडिचोइओ चियत्ता मे पडिचोयणा अब्भुट्ठिओऽहं तुब्भण्हं तवतेयसिरीए इमाओ चाउरंतसंसारकंताराओ साहट्टु नित्थारिस्सामित्तिकट्टु सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि।

स्पष्ट है। संगहिओ = ज्ञानादि द्वारा तैयार किया।
सारिओ = हित में जोड़ा। वारिओ = अहित से रोका।
चोइओ = स्खलना में प्रेरणा की।
पडिचोइओ = बार-बार प्रेरणा कर अवस्था में स्थापित किया।
आ. कहते हैं - नित्थारगपारगा होह = निस्तार को प्राप्त करने वाले हो।

टीप्पणक

अपुब्भाइं = भविष्यकाल के वंदनों को मैं इच्छता हूँ

कयाइं च मे किइकम्माइं = पूर्व काल में मेरे द्वारा वंदन किए गए। (वैयावच्च रूप)

उन वैयावच्च विशेष के करने पर –

आयारमंतरे विणयमंतरे = ज्ञानादि आचार में अथवा आचार में व्यवधान होने पर और आसन देने वि. विनय में अथवा विनय न करने में

सेहिओ = आपके द्वारा मैं शिक्षित किया गया अथवा आचार और विनय में कुशल किया गया (शिक्षित) (सेचित)

सेहाविओ = उपाध्यायादि द्वारा शिक्षा दिलाया गया या कुशल किया गया

संगहिओ = शिष्य रूप में आश्रय दिया तथा ज्ञानादि और वस्त्रादि द्वारा ~~सत्कार~~ सहारा किया गया

चियत्ता मे पडिचोयणा = आपके द्वारा की जाती प्रतिप्रेरणा मेरी प्रीति का विषय है। यह शिक्षादि का उपलक्षण है।

सब्भुट्ठिओ हं = प्रतिप्रेरणा वि. में उद्यम करने में उपस्थित हूँ।

तुब्भेहं तवतेयसिरीए = ~~आपकी~~ आपकी तप-तेज रूपी लक्ष्मी से।

इमाओ चाउरंतसंसारकंतारओ = इस चातुरंत संसार रूप जंगल से।

साहट्टु = कषाय-इंद्रिय-योगादि से विस्तीर्ण आत्मा का संक्षेप कर

नित्थारिस्सामि = मैं निस्तार पाऊँगा।

त्तिकट्टु = इस हेतु से

शिरसा = आपको वंदन करता हूँ।

यहाँ शुरू में जो 'अपुब्भाइं' पद लिखा है, वह बहुत सारी प्रतों में नहीं दिखता है, मात्र पूर्वाचार्यों द्वारा व्याख्यात है और युक्तिसंगत है इसलिए मेरे द्वारा भी व्याख्या की गई। अथवा 'कयाइं च' यहाँ च शब्द अन्य पक्ष का सूचक है अतः इससे भी यह अर्थ प्राप्त होता है।

हरिभद्रीय वृत्ति

ऐसे शेष साधु भी खामणा वंदन करते हैं। यदि बहुत संशय हो गया हो अथवा कोई व्याघात हो तो 7, 5 या 3 को वंदन करे। फिर दैवसिक प्रतिक्रमण करे। प्रतिक्रमण कर गुरु वंदन कर आ. वर्धमान 3 स्तुति बोलते हैं, तब साधु भी अंजलि मुद्रा से हाथ जोड़कर हर स्तुति पूर्ण होने पर नमस्कार करे। फिर सभी स्तुति बोले। इस दिन सूत्रपोरसी या अर्थपोरसी नहीं करते, जिसे जितनी आती हो उतनी स्तुति बोलते हैं। यह पक्खी प्रतिक्रमण की विधि मूलटीकानुसार कही।

अन्य आ. आचरणानुसार यह विधि कहते हैं – दैवसिक प्रतिक्रमण और खामणा के बाद पहले गुरु उठकर रत्नाधिक क्रम से पक्खी खामणा करते हैं। फिर वे बैठ जाते हैं, शेष साधु खामणा करते हैं। शेष विधि समान।
पक्खी प्रतिक्रमण की विधि कही।
चौमासी प्रतिक्रमण भी same विशेष काउसग्ग 500 श्वास, सांवत्सरिक में 1008 श्वास। चौमासी और सांवत्सरिक पर सभी मूल-उत्तर गुणों की आत्मोचना कर प्रतिक्रमण करते हैं। क्षेत्र देवता का काउसग्ग करते हैं। कोई चौमासी में शय्या देवता का भी काउसग्ग करते हैं। सुबह में आवश्यक करने पर पंचकल्याणक प्रायश्चित्त ग्रहण करते हैं। पूर्वगृहीत अभिग्रह गुरु को कहते हैं। उनका सम्यक् पालन न किया हो तो कूइयकक्कराइय का काउसग्ग करते हैं। पुनः ~~अन्य~~ अन्य अभिग्रह करते हैं क्योंकि साधुओं को अभिग्रह रहित रहना नहीं कल्पता है।
संवत्सरी में आवश्यक करने पर सुबह पर्युषणा कल्प पढ़ा जाता है। यह कल्प पूर्व के 9 दिन से पढ़ा जाता है और बाद में भी (यदि बाकी रहे तो)। यह सामाचारी है।
इसी सामाचारी को भाष्यकार संक्षेप में कहते हैं –

भा. 234-5 उपर्युक्त अर्थ।

इव. अब नियत कायोत्सर्ग का प्रतिपादन करते हैं-

गा. 1532 दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चौमासी और वार्षिक, ये नियत काउसग्ग हैं। शेष गमनागमनादि विषयक काउसग्ग अनियत हैं।

गा. 1533-4 शाम के प्रतिक्रमण में 100 श्वास का काउसग्ग (4, 4 लोगस्स से किया जाता है। (2-1-1 लोगस्स के काउसग्ग)। सुबह 50 श्वास का 2 लोगस्स से किया जाता है (1-1)। पक्खी में 300 श्वास 12 लोगस्स से, चौमासी में 500 श्वास 20 लोगस्स से, वर्ष में 1008 श्वास 40 लोगस्स + 1 नवकार से। उच्छ्वास का प्रमाण आगे कहेंगे।

~~भा. 1534~~ गा. 1535 8 श्वास का एक श्लोक। दैवसिक में 25, रात्रि - 12½, पक्खी - 75, चौमासी - 125 संवत्सरी - 252 श्लोक।

इव. नियत काउसग्ग कहे गए। अनियत काउसग्ग की वक्तव्यता -

गा. 1536 (हार गा.) 1. गमनागमन 2. विहार, 3. सूत्र, 4. स्वप्न दर्शन, 5. नाव में, 6. नदी, 7. पुल - इन सभी में इरियावही का प्रतिक्रमण करना।

भा. 236 1. गमनागमन - गोचरी के लिए अन्य ग्राम गए हो, वहाँ अभी भक्त-पान की वेला न हुई हो तो वहाँ इरियावही कर राह देखे। पुनः आकर भी इरियावही करे। शयन - आसन - पीठ फलकादि के लिए गमनागमन किया हो तो इरियावही। चैत्य घर या साधु की वसति में गए हो तो इरियावही। उच्चार या मात्रु परठने एक हाथ गया हो तो भी प्रतिक्रमण करे। यदि मात्रक में ही वोसिराया हो तो जो परठे वह इरियावही करे। 100 हाथ बाहर जाकर आए तो इरियावही, अंदर हो तो न करे। इन स्थानों में 25 श्वास का काउसग्ग करे।

गा. 1 (अधिक) 2. विहार - स्वयं के स्थान में असज्झाय होने पर सूत्र पोरसी के लिए अन्यत्र जाए

तो इरियावही।

गा. 1537 3. सूत्र - सूत्र के उद्देश, समुद्देश और अनुज्ञापन में 127 श्वास का काउसग्ग होता है। यदि साधु अशठ हो तो स्वयं पारे, यदि शठ हो तो गा. कहे तब पारे। गुरु ने किसी को कार्य के लिए भेजा हो, यदि उसे स्खलना हो 8 श्वास का काउसग्ग कर जाए, दूसरी बार स्खलना हो तो 16 श्वास का काउसग्ग कर जाए, तीसरी बार हो तो न जाए। यदि जाना ही पड़े तो अरिहंत देव को वंदन कर स्वयं के आगे दूसरे साधु को रखकर जाए।

काल के प्रतिक्रमण में, कालग्रहण में, काल प्रस्थापन में, गोचरी में, श्रुतस्कंध के परावर्तन में 8 श्वास का काउसग्ग। अन्य परावर्तन में 25 श्वास कहते हैं।

गा. 1538-9 4. अकाल में पढ़ना, काल में न पढ़ना, श्रुत आशातना, समुद्देश, अनुज्ञा वि. में अतिचार संभव होने से काउसग्ग घटता है किंतु जो श्रुत अभी उद्देश किया जा रहा है, जिसने अभी अपराध का विषय यानि श्रुत पढ़ा नहीं है विषय न होने से अपराध भी हुआ नहीं है तो वहाँ उद्देश में काउसग्ग दोष के लिए क्यों कराते हो? यदि दोष के लिए नहीं कराते तो काउसग्ग की जरूर नहीं है।

गा. 1540 3. पाप का घात करने वाले काउसग्ग को मंगल के लिए कहा जाता है।

गा. 1541 4. स्वप्न दर्शन - स्वप्न में प्राणवध - मृषावाद - अदत्तादान - मैथुन - परिग्रह का सेवन हुआ हो तो 100 श्वास का काउसग्ग। मैथुन में विशेष - दृष्टि विपर्यास हुआ हो तो 100, स्त्री विपर्यास हुआ हो तो 108 श्वास का काउसग्ग किया जाता है।

गा. 1 (प्रक्षिप्त) 5.6.7. नाव - नदी - पुल → नाव से नदी पारकर या नदी में चलकर या चंचल पुल से नदी पारकर 25 श्वास का काउसग्ग करना चाहिए।

अव. एक श्वास का कालप्रमाण—

गा. 1542 एक श्वास एक पद समान काल प्रमाण से जानना। यह कालप्रमाण उत्सर्ग से है।

द्वार गा. 1536 चूर्ण (Pg. 79)।

अव. ६. भेद परिमाण द्वार चूर्ण (गा. 1423 Pg. 39)। ८. अशठ द्वार—

विज्ञान जानने वाले और शाठ्य रहित ऐसे साधु को आत्महित मानकर स्वयं के बल की अपेक्षा काउसग्ग करना चाहिए। अन्य प्रकार से करने में अनेक दोष संभव है—

भा. 237 जो 30वर्ष का है और बलवान् तथा आतंक रहित है, वह 70वर्ष के अन्य साधु के साथ ही काउसग्ग प्रारंभ करता और पारता है तो वह ऊँचे चढ़ान पर सीधा नहीं चलने वाले बैल की तरह जड़ है क्योंकि स्वहित के ज्ञान शून्य है। आत्महित मानकर ही काउसग्ग करना कर्म क्षय रूप फल देता है।

भा. 238 वृद्ध बैल सीधी भूमि पर भी सीधा नहीं चलता तो ऊँचे चढ़ान पर अवश्य अधिक परेशान होता है। और सीधा नहीं चलने से ज्यादा मार भी खाता है। (दृष्टांत)

गा. 1 (प्रक्षिप्त) (दार्ष्टान्तिक-) ऐसे बलवान् साधु भी माया से यदि काउसग्ग सम्यक् नहीं करता तो कर्म बंध होता है और काउसग्ग का क्लेश भी होता है। माया और आशंसा रहित यथाशक्ति अनुष्ठान सफल होता है।

गा. 1543 (माया वाले को होने वाले दोष-) ~~असक्त से समर्थ होने पर भी~~ माया से काउसग्ग और शेष तप न करने वाले साधु सिवाय उसके शेष कर्म कौन भोगेगा? अर्थात् वह स्वयं ही भोगेगा।

प्र. कर्म को शेष क्यों कहा? उ. सम्यक्त्व प्राप्ति के पहले उत्कृष्ट कर्म की अपेक्षा यहाँ शेष कर्म कहे हैं।

गा. 1544 माया बिना समान बलवान् अन्य साधु से सविशेष काउसग्ग करे किंतु मैं इससे ज्यादा करूँ ऐसे अभिमान से न करो। स्थाणु की तरह खड़े हुए,

निष्कंप, शत्रु-मित्र को समान मानता काउसग्ग करे। तुशल से भिक्षा वि. भी ऐसे ही करे।

अव. बल और वय अनुसार काउसग्ग करने की विधि-

गा.1545 1. तरुण बलवान् 2. तरुण दुर्बल 3. स्थविर बलवान् 4. स्थविर दुर्बल - इन चारों भांगों में यथाशक्ति काउसग्ग में खड़े रहे। ये बहु मुझसे ज्यादा कर रहा है' ऐसा सोचकर तरुण दुर्बल त्वंबा काउसग्ग न करे क्योंकि बाद में असमाधि-ग्लानादि में अधिकरण (हिंसा) का संभव है।

अव. F. अशठ द्वार पूर्ण (द्वार गा. 1429 Pg. 39) | G. शठ द्वार -

गा.1546 काउसग्ग करने के समय माया से नींद ले, सूत्र-अर्थ की प्रतिपृच्छा करे, काँटा निकाले, स्खलित जाए, मात्रु जाए, धर्मकथा करे अथवा माया से बिमार हो तो अनुष्ठान कूर होता है।

अव. G. शठ द्वार पूर्ण (द्वार गा 1429 Pg. 39) | H. विधि द्वार -

गा.1547 गुरु के पहले काउसग्ग चालू करे और गुरु के बाद पारे। बलवान् तरुण साधु अधिक काउसग्ग भी करे।

गा.1548 पैर में 4 अंगुल अंतर करे। सीधे हाथ से मुहपत्ति, उल्टे हाथ से रजोहरण ग्रहण ग करे। इस विधि से देह वोसिराकर काउसग्ग करे।

अव. H. विधि द्वार पूर्ण | I. दोष -

गा. 1549 1. घोटक दोष - घोड़े की तरह काउसग्ग में टेढ़ा पैर रखे।
2. लता - जैसे लता हवा से हिलती है, ऐसे काउस्स काउसग्ग में हिले।
3. स्तंभ - थंभे पर टेका लेकर काउसग्ग करे।

4. मात्या - ऊपर के माल यानि मंजिल पर सिर टिकाकर काउसग्ग करे।
5. शबरी - शबरी यानि आदिवासी स्त्री। जैसे वह स्त्री वस्त्र रहित होने पर हाथ से गुप्त अंगों को छुपाती है, वैसे हाथ से गुप्त अंगों को छुपाना।
6. वधू - कुलवधू जैसे मस्तक झुकाकर काउसग्ग करना।
7. निगड़ - सांकल से जैसे पैर बंधे हो वैसे दोनों पैर एकदम पास या दूर रखना।
8. लंबोत्तर - चोलपट्टे को आतिधि से नाभि के ऊपर और घुटने तक नीचे रखना।
9. स्तन - मच्छर वि. से रक्षा के लिए या अज्ञान से चोलपट्टे वि. वस्त्र से स्तन की तरह शरीर ढाँकना।
10. ऊर्ध्विका - २ प्र. बाह्य ऊर्ध्विका = ऐड़ी मिलाना और पंजे दूर।
    अभ्यंतर " = एड़ी दूर और पंजे पास।
11. संयती - साध्वी की तरह वस्त्र से दोनों कंधे वि. ढँकना।
12. खलीन - घोड़े के मुँह में रही लगाम की तरह रजोहरण की दशी आगे और दांडी पीछे रखे।
13. वायस - कौए की तरह चलचित्त वाला दृष्टि घुमाए।
14. कपित्थ - कपित्थ फल की तरह चोलपट्टे को इच्छानुसार जूं के डर से पैर के बीच में भराना।
15. शीर्षोत्कंपित = यक्ष शरीर में घुसा हो ऐसे सिर हिलाए।
16. मूक - पास में कोई वनस्पति वि. छेदता हो तो उसे रोकने काउसग्ग में मूक की तरह 'हुं हुं' करे।
17. अंगुलिभ्रमुहा - उंगली और भ्रू (eyebrow) घुमाए। सालापक गिनने की उंगली और सामने किसी को कुछ कहते हुए रोकने हे eyebrow घुमाए।
18. वारुणी - काउसग्ग में शराबी की तरह अस्पष्ट बोले।
19. प्रेक्षा - बंदर की तरह होठ हिलाए (नवकार या लोगस्स गिनते हुए)

चोलपट्टा नाभि के नीचे पहनना। हाथ घुटने की ओर लंबे रखना। चोलपट्टा दोनों की हाथ की कोहनी से पकड़ कर रखना। काउसग्ग नमस्कार से पारकर अंत में स्तुति बोलना।

अव. प्रासंगिक पूर्ण हुआ। 5. कल्प द्वार (द्वार गा. 1425 पृ. 39) —
कहे गए दोषों से रहित भी जिसे यह काउसग्ग यथोक्त फल वाला होता है, उसे कहते हैं —

गा. 1551 जो वासी-चंदन कल्प यानि वासी-छुरी से शरीर काटने द्वारा अपकार और गोशीर्ष चंदन से लेप द्वारा उपकार करने वाले पर मध्यस्थ हो, जो जीवन-मरण में समान बुद्धि वाला हो और देह में अप्रतिबद्ध हो, उसका काउसग्ग होता है।

गा. 1552 दिव्य-मानुष-तिर्यंच संबंधी उप. के उपसर्ग को सम्यक् प्र. से सहन करने से ~~काउसग्ग~~ काउसग्ग शुद्ध होता है।

अव. 6. फल द्वार — फल 2 प्र. इहलोक, परलोक —

गा. 1553 इहलोक फल में, 1. सुभद्रा का उदाहरण — वसंतपुर x जितशत्रु x जिनदत्त सेठ, साधु का श्राद्ध x सुभद्रा पुत्री, अत्यंत रूपवती, सुंदर शरीरवाली और श्राविका x वह असाधर्मिकों को नहीं देता है x वह चंपा के बौद्ध श्राद्ध द्वारा देखी गई x उसके रूप के लोभ से वह कपट श्राद्ध बना x धर्म सुनता है, जिन-मुनि की पूजा करता है x एकदा वास्तव में जिनधर्म की रुचि हुई x सा. के पास आलोचना ली x सा. ने भी हितशिक्षा दी x जिनदत्त ने भी उसके सुंदर भाव जानकर 8 पुत्री दी x कुछ समय बाद दोनों चंपा गए x बौद्ध की श्रद्धा वाली ननंद-सासु वि. उसकी खिंसा करती है x दोनों अलग घर में गए x वहाँ अनेक साधु-साध्वी प्रायोग्य गोचरी लेने आते हैं x सासु वि. कहती है - यह साधु पर राग वाली है x सुभद्रा का पति नहीं जानता x
एकदा एक युवान् साधु लेने गए x उनकी आँख में हवा से उड़ा रजकण सुभद्रा ने

देखा x जीभ से खींचकर निकाला x तब उसका तिलक साधु के कपाल पर लग गया x साधु को भी उपयोग न होने से पता न चला x वे निकले x तब सासु बि. ने अकाल में घर आए पुत्र को दिखाया - संक्रांत हुए तेरी पत्नी के तिलक को देख x उसने सोचा - यह भी ऐसा कर सकती है। x पति का स्नेह कम हुआ x सुभद्रा समझ गई x शासन देवता का संकल्प कर रात में काउसग्ग में खड़ी रही x आस-पास की कोई देवी ने कहा - तेरा क्या प्रिय करूँ ? x सुभद्रा - प्रवचन-हीलना दूर करो x देवी - सुबह मैं नगर के द्वार बंद करूँगी x, जब लोग व्याकुल होंगे तब आकाश में मैं कहूँगी कि मन से भी परपुरुष को न इच्छने वाली स्त्री चलनी में पानी भरकर दरवाजे पर छींटेगी तब दरवाजा खुलेगा, शेष स्त्रियाँ न खोल सके तब तू खोलना, जिससे प्रवचन हीलना दूर होगी तू प्रशंसा पायेगी x ऐसे ही प्रशंसा को प्राप्त हुई।

अन्य मत - वाराणसी में सुभद्रा ने काउसग्ग किया, एडकाक्ष नगरोत्पत्ति कथा कथासंग्रह के पथे भेद में भाग Pg.) ।

2. रानी को प्राप्त करने के लोभी धर्मरुचि राजा से घिरे उदितोदित राजा का काउसग्ग से उपसर्ग दूर हुआ। (कथा नमस्कार निर्युक्ति भाग Pg) ।

3. चंपा x सुदर्शन श्रेष्ठिपुत्र x हर आठम - चौदस को चत्वर (4 रास्ते का चौराहा) पर श्रावक प्रतिमा स्वीकारता है x एकदा रानी के प्रार्थना करने पर उसने मना किया x एकदा रात को काउसग्ग में था तब रानी की दासी कपड़े में लपेटकर अंतःपुर ले गई x द्वारपाल के पूछने पर 'देवप्रतिमा है' कहा x रानी के बहुत आग्रह पर भी न माना तो रानी ने कोलाहल किया x राजा ने लाने की आज्ञा दी x उसकी पत्नी मित्रवती ने सुना तो सर्वांग यक्ष की आराधना के लिए काउसग्ग में खड़ी रही x 'सुदर्शन के 8 टुकड़े हो' ऐसे आशय से चांडाल ने तलवार का प्रहार किया तभी सर्वांग यक्ष ने तलवार को फूल की माला बना दी x राजा ने उसे सत्कार कर छोड़ा तब मित्रवती ने काउसग्ग पारा xx

4. सोदास राजा की कथा नमस्कार निर्युक्ति में (भाग Pg.) ||(इस दृष्टांत में कहीं भी काउसग्ग की बात नहीं है किंतु नीचे कहे जाने वाले इस दृष्टांत जैसा यह दृष्टांत लगता है।)

5. गेंडा – पूर्वभव में श्रामण्य विराधना से एक जीव गेंडा बना × जो रास्ते से निकलता है, उसे मार देता है × एक बार साधु आए × वह देखकर मारने आया × साधु काउसग्ग में खड़े रहे × काउसग्ग के प्रभाव से उन्हें मारने वह समर्थ न बना तब शांत हुआ।
ये सब ऐहिक फल है। परलोक में मोक्ष, देवलोक या चक्री वि. फल है।

अव. प्र. सिद्धि सकल कर्मक्षय से ही होती है। तो ~~सकल कर्मक्षय~~ काउसग्ग से कैसे होता है?

उ. यहाँ परंपराकारण की विवक्षा है। काउसग्ग का मोक्ष फल कर्मक्षय है और कर्मक्षय से मोक्ष होता है। ऊपर परंपरा से ही काउसग्ग को मोक्ष फल कहा है।

प्र. काउसग्ग से कर्मक्षय कैसे? –

भा.239 जैसे आरी आती हुई और जाती हुई लकड़ी को छेदती है, वैसे साधु काउसग्ग से कर्म निर्जरा करते है।

गा.1554 काउसग्ग में रहे हुए के अंगोपांग को पीड़ा होती है और चित्त निरोध होता है इसलिए कर्म निर्जरा होती है।

गा. 1555 प्र. यदि काउसग्ग में अंगोपांगों को पीड़ा होती है तो अपकार दिखता ही होने से काउसग्ग से क्या?

उ. स्वकर्म से गृहण किया हुआ, मात्र आलय रूप, अशाश्वत ऐसा शरीर अत्यंत है और इसमें रहने वाला जीव, शाश्वत, स्वकृत कर्म का उपभोक्ता अत्यंत है। शरीर को जीव छोड़ता ही है। ऐसी बुद्धि कर अर्थात् विचारकर दुःख और क्लेश करने वाले ममत्व को शरीर से छोड़ अर्थात् शरीर के ममत्व को छोड़ और असार ऐसे इस शरीर से भी यदि कोई पारलौकिक अर्थ संपादित होता है तो अवश्य यत्न करना चाहिए।

गा.1556 और ऐसा विचारना चाहिए - जिन प्रणीत धर्म नहीं कर मैंने जितने शारीर-मानसिक दुःख चारगति रूप संसार में अनुभव किए हैं, उनसे भी अधिक दुःख पूर्वक सहन करने वाले आगे नरकों में पुण्य न करने वाले जीवों को दुःख होंगे।

गा.1557 अतः निर्मम और सूत्र के परमार्थ को जानने वाले साधु द्वारा शुभ अध्यवसाय से पूर्व ऐसा कायोत्सर्ग कर्मक्षय के लिए किया जाना चाहिए, स्वर्गादि के लिए नहीं।

~~अनुगम~~ द्वार गा. 1429 पूर्ण (Pg. 39)।

अनुगम कहे गए। नय पूर्ववत्। (1 भाग 5 Pg.)।

कायोत्सर्गविवरणं कृत्वा यदवाप्तमिह मया पुण्यम्।
तेन खलु सर्वसत्त्वाः पञ्चविधं कायमुज्झन्तु ॥1॥

श्रीकायोत्सर्गाध्ययनं समाप्तम्।

श्री प्रत्याख्यानाध्ययनम् ।

कायोत्सर्गाध्ययन कहा गया। अब प्रत्याख्यान अध्ययन शुरु किया जाता है। इसका संबंध-

① अनन्तर अध्ययन में स्खलन विशेष से हुए अपराध रूप घाव की निंदा मात्र से अशुद्ध साधु की प्रायश्चित्त रूप औषध से चिकित्सा कही। यहाँ गुणधारणा कहते हैं अर्थात् पुनः मूल-उत्तर गुण को धारणा करना चाहिए। यह गुण-धारणा मूल-उत्तर गुण के प्रत्याख्यान रूप है। ऐसे प्रत्याख्यान का यहाँ निरूपण करते हैं। अथवा

② काउसग्ग अध्ययन में 'पूर्वार्जित कर्म का काउसग्ग से क्षय कहा है। यहाँ प्रत्याख्यान से कर्म के क्षयोपशम और क्षय से उत्पन्न फल कहते हैं। अथवा

③ सामायिक में चारित्र कहा। चतुर्विंशति स्तव में अरिहंतों के गुणों की स्तुति कही, यह दर्शन-ज्ञान रूप है। ऐहिक-आमुष्मिक अपाय को छोड़ने की इच्छा वाले को उपर्युक्त दर्शन-ज्ञान-चारित्रिक के वितथासेवन गुरु को कहना चाहिए। यह निवेदन वंदन पूर्वक होता है इसलिए वंदन अध्ययन कहा। निवेदन कर पुनः शुभ स्थानों में वापस आना चाहिए इसलिए प्रतिक्रमण अध्ययन कहा। व इसके बाद भी अशुद्ध रहे साधु के अपराध रूप घाव की चिकित्सा आलोचना से लेकर काउसग्ग तक प्रायश्चित्त रूप औषध काउसग्ग अध्ययन में कही। तो भी अशुद्ध रहे की चिकित्सा प्रत्याख्यान से होती है इसलिए प्रत्याख्यान अध्ययन कहते हैं।

अब. इस प्रकार अनेक संबंध से आए हुए प्रत्याख्यान अध्ययन के ५ अनुयोग द्वार विस्तार सहित कहने चाहिए। उसमें नामनिष्पन्न निक्षेप द्वार में प्रत्याख्यान और अध्ययन, 2 शब्द (देखें अनुयोग द्वार Part भा. 1 Pg. , भाग ५ Pg. अब.)।

अब. इसमें प्रत्याख्यान शब्द को द्वार गा. —

गा.1584 (द्वार गा.) A. प्रत्याख्यान B. प्रत्याख्याता C. प्रत्याख्येय D. पर्षदा E. कथनविधि F. फल -इस में ये ६ भेद हैं।

A. प्रत्याख्यान = ① प्रत्याख्यायते ऽनेन = मन-वचन-काया की क्रिया के जाल से किसी अनिष्ट का त्याग करने वाला।

② क्रिया और क्रियावान् के कथंचित् अभेद से प्रत्याख्यान क्रिया ही प्रत्याख्यान है।

③ प्रत्याख्यायते अस्मिन् सति = ~~प्रत्याख्य~~ ये होने पर प्रत्याख्यान किया जाता है, वह

B. प्रत्याख्याता = गुरु और शिष्य पच्चक्खाण करने (छोड़ा) वाले।

C. प्रत्याख्येय = पच्चक्खाण का विषयवस्तु।

D. पर्षदा = ~~कि~~ कैसी पर्षदा को यह कहना चाहिए।

E. कथनविधि = कहने की विधि।

F. फल = २७. ऐहिक, आमुष्मिक।

अब. A. प्रत्याख्यान द्वार -

भा. 240 नाम स्थापना द्रव्य अदित्सा प्रतिषेध भाव - 6 भेद।

भा. 241 नाम-स्थापना कहे गए। द्रव्य प्रत्याख्यान ⇒

1. द्रव्यनिमित्तक प्रत्याख्यान = वस्त्रादि द्रव्य के लिए किया जाता। eg. वर्तमान काल के ~~व्यक्तियों~~ द्वारा उन-उन द्रव्यों के लिए किया जाता त्याग।

2. द्रव्ये प्रत्याख्यान = भूमि वि. पर रहा हुआ पच्चक्खाण करे।

3. द्रव्यभूत यानि उपयोग रहित होकर पच्चक्खाण करे। यह पच्चक्खाण अभीष्ट फल को देने वाला न होने से द्रव्य प्रत्याख्यान है।

द्रव्यस्य, द्रव्याणां वि. समझ लेना।

द्रव्य प्रत्याख्यान का उदाहरण - एक राजा की पुत्री दूसरे राजा को दी गई × वह राजा मर गया × तो राजा पुत्री को वापस ले आया और कहा - तू सब धर्म कर × वह पाखंडियों को दान देती है × एकदा 'कार्तिक मास धर्म का मास है' ऐसा सोचकर मांस का त्याग किया × उसके पारणे में खंडी राजा लाखों पशु मांस के लिए लाए × उस दिन सबको इच्छित भोजन दिया गया × वहाँ से निकलते साधु को बुलाया × उन्होंने भोजन लिया किंतु मांस नहीं लिया × राजपुत्री ने पूछा - आपका कार्तिक मास अभी भी पूर्ण नहीं हुआ × साधु - हमें तो यावज्जीव कार्तिक मास है ×

पूछने पर धर्म कथा कही और मांस के दोष कहे x क्षोभ पाकर दीक्षा ली x ऐसे उसका द्रव्य पच्चक्खाण था, वीर में भाव पच्चक्खाण हुआ।

अदित्सा प्रत्याख्यान = 'हे ब्राह्मण! या हे श्रमण! आपने जो माँगा है, वो तो है किंतु मेरी देने की इच्छा नहीं है' ऐसा निषेधात्मक प्रत्याख्यान।

भा.242 प्रतिषेध प्रत्याख्यान = 'अमुक घी वि. मुझे दो'। 'मेरे पास नहीं है, मेरी देने की इच्छा तो है' यह प्रतिषेध प्रत्याख्यान।

भा.243 भाव प्रत्याख्यान = 2 प्र. श्रुत, नोश्रुत प्रत्याख्यान। श्रुतप्रत्याख्यान 2 प्र. पूर्वश्रुत, नोपूर्वश्रुत।

पूर्वश्रुत प्रत्याख्यान = 9वां प्रत्याख्यान पूर्व।

नोपूर्वश्रुत प्रत्याख्यान = यह प्रत्याख्यान अध्ययन, आतुर प्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान वि.। (पूर्व सिवाय का।)

भा.244 नोश्रुतप्रत्याख्यान 2 प्र. मूलगुण और उत्तरगुण विषयक।

मूलगुण प्रत्याख्यान 2 प्र. सर्वमूलगुण प्रत्याख्यान = 5 महाव्रत।

देश " " = 5 अणुव्रत।

उत्तरगुण " 2 प्र. सर्व उत्तर " " = 10 प्र. के अनागतादि।

देश " " = 7 प्र. (3 गुणव्रत + 4 शिक्षाव्रत)

उत्तर गुण प्रत्याख्यान के अन्य अपेक्षा से 2 भेद -

1. इत्वर - साधु के ग्रामेगृहादि और श्रावकों के 4 शिक्षाव्रत।
2. यावत्कथिक - नियंत्रित प्रत्याख्यान (गा. 1573 में कहेंगे) जो जंगल - दुकाल वि. में भी नहीं तोड़ा जाता और श्रावकों के 5 + 3 गुणव्रत।

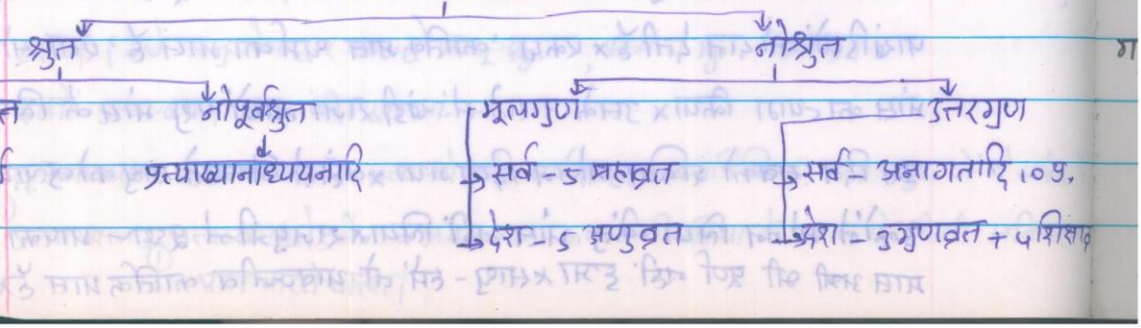

सव. सर्वमूलगुण प्रत्याख्यान –

भा.245 प्राणातिपात-मृषावाद – अदत्तादान – मैथुन-परिग्रह से साधु त्रिविध-त्रिविध से विरत होते हैं। त्रिविध = करण - करावण - अनुमोदन, त्रिविधेन = मन-वचन-काय

प्रत. देश मूलगुण प्रत्याख्यान का अवसर है। यह प्रत्याख्यान श्रावकों को होता है। अतः शिष्य के अनुग्रह के लिए श्रावक धर्म की विधि ही संक्षेप से कहते हैं –

भा.1559 श्रावक = यो ~~श्रु~~ शृण्युपेतसम्यक्त्वो यतिभ्यः प्रत्यहं कथाम् ।
शृणोति धर्मसम्बद्धामसौ श्रावक उच्यते ॥
सम्यक्त्व स्वीकारने वाला, साधुओं के पास से रोज धर्मकथा, साधु की सामाचारी और श्रावक की सामाचारी सुनने वाला श्रावक कहा जाता है। धीर पुरुष ऐसे तीर्थंकर-गणधर द्वारा प्रज्ञप्त श्रावक ~~के~~ धर्म की विधि कहूँगा, जिसे सुनकर/आचरणकर सुविहित गृहस्थ इहलोक और परलोक के सुख प्राप्त करते हैं।

भा.1560 श्रावक 2 प्र. – 1. साग्निग्रह = अग्निग्रह के साथ रहने वाले। अग्निग्रह अनेक प्रकार के होने से ये अनेक प्रकार के होते हैं।

2. निरग्निग्रह = अग्निग्रह रहित, केवल सम्यग्दर्शन धारण करने वाले। eg. कृष्ण, सत्यकि श्रेणिक वि.।

इन श्रावकों को भी अग्निग्रह के भेद से वाँटे तो 8 भेद होते हैं (साग्निग्रह के 7 भेद + निरग्निग्रह का 1 भेद)।

भा.1561 1. द्विविध (कृत कारित) त्रिविध (मन वचन काया) के अग्निग्रह वाले – मन-वचन-काया से eg. स्वयं हिंसा करते नहीं, कराते नहीं किंतु अनुमति दे सकते हैं क्योंकि इन्हें पुत्रादि का परिग्रह है और पुत्र वि. कुछ हिंसा करे तो इन्हें भी अनुमति होती है। यदि परिग्रह से अनुमति न मानो तो परिग्रह वाले और परिग्रह रहित में कोई भेद न रहने से साधु-श्रावक में अभेद होने की आपत्ति होगी।

प्र. भगवती आगम में श्रावक को भी त्रिविध-त्रिविध पच्चक्खाण कहा है। यहाँ पहले वो क्यों नहीं बताया?

उ. वह विशेष विषय में ही होता है।-

(6) दीक्षा लेने की इच्छा वाला किंतु पुत्रादि छोटे होने से ही संसार में रुका हो, वह श्रावक प्रतिमा स्वीकारे तो।

(7) स्वयंभूरमणादि के मत्स्यादि विषयक।

(8) स्थूल हिंसा का संपूर्ण त्याग।

प्र. किंतु निर्युक्तिकार यहाँ 32 भेद कहेंगे (गा. 1564 में) उसमें भी यह भेद क्यों नहीं बताया)

उ. बहुलता की अपेक्षा से।

2. द्विविध-द्विविध → जब मन-वचन से अथवा मन-काया से अथवा वचन-काया से प्राणातिपातादि स्वयं न करे और अन्य से न कराए।

प्र. मन-वचन से या मन-काया से या वचन-काया से हिंसादि का त्याग कैसे घटेगा?

उ. यहाँ मुख्य-गौण की विवक्षा है। जब मन-वचन से करते, कराते नहीं हैं तब मन से हिंसा के विचार बिना ही, वचन से हिंसक नहीं बोलता हुआ दुश्चेष्टित वि. काया से ही प्रमादी की तरह हिंसा करता है (अर्थात् मन-वचन गौण, काया मुख्य)। जब मन-काया से नहीं करता-कराता है तब मन से सोचे बिना और काया से दुश्चेष्टा किए बिना उपयोग से वचन द्वारा हिंसक बोलता है। जब वचन-काया से करता-कराता नहीं है तब मन से सोचने में ही हिंसा करता है। अनुमति तो तीनों से सभी जगह जानना। ऐसे ही आगे बताए जाने वाले शेष विकल्प भी जानना।

3. द्विविध-एकविध → मन से अथवा वचन से अथवा काय से करण-करावण निषेध।

4. एकविध (करण) - त्रिविध (मन-वचन-काया)

5. एकविध (कृत) - द्विविध (मन-वचन | मन-काया | वचन-काया)

गा. 1562 6. एकविध-एकविध → कृत - मन | वचन | काया

7. उत्तरगुण को स्वीकारने वाला। यहाँ सभी या कुछ उत्तरगुण की विवक्षा बिना सामान्य

से एक ही भेद कहा।

8. अविरत सम्यग्दृष्टि

(उपर्युक्त 6 भेद में श्रावक के सभी पच्चक्खाणों का समावेश हो जाता है)।

ऐसे ये 8 भेद कहे गए।

गा.1563 इनके ही विभाग करने पर 32 भेद होते हैं। कोई 5 अणुव्रत एकसाथ ही ग्रहण करे, उसके 6 भेद होंगे। कोई 4-3-2-1 क्रमशः एकसाथ ग्रहण करे तो प्रत्येक के 6-6 भेद होंगे। ऐसे 5 षटक के 30 भांगे। कोई उत्तरगुण ग्रहण करे तो इसके 1 भेद सहित 31 भांगे। अविरत सम्यग्दृष्टि के 1 भांगे सहित 32 भेद।

गा.1564 मूलगुण-उत्तरगुण का आधार सम्यक्त्व है इसलिए ये श्रावक निःशंकित, निष्कांक्षित वि. होते हैं (शंका-कांक्षा वि. का स्वरूप आगे कहेंगे)। ऐसे 32 श्रावक कहे गए।

इन 32 प्र. को करणत्रिक-योगत्रिक-कालत्रिक से विशेष करें तो 147 भेद होंगे

1. मन से प्राणातिपात न करे 2. वचन से प्राणातिपात न करे
3. काया से " " 4. मन-वचन से " "
5. मन-काया " " 6. वचन-काय " "
7. मन-वचन-काया " " ।

ऐसे 7 भांगे कारण से, 7 अनुमोदन से। फिर

1. मन से प्राणातिपात न करे-कराए 2. वचन से प्राणातिपात न करे-कराए
3. काय " " 4. मन-वचन " "
5. मन-काय " " 6. वचन-काय " "
7. मन-वचन-काय " " ।

ऐसे 7 भांगे करे-अनुमोदन, 7 कारण-अनुमोदन, 7 कारण-कारण-अनुमोदन।

कुल 49 भांगे हुए।

49 भांगा-प्राणातिपात न करे-कराए-अनुमोदे, मन-वचन-काया से। यह

विकल्प प्रतिज्ञा स्वीकारे हुए श्रावक को होती है। ऐसे श्रावक को ४९ भांगे अतीत काल में का प्रतिक्रमण करते हुए को, वर्तमान में ४९ भांगे संवर करते को, भविष्य में ४९ भांगे पच्चक्खाण करते को, कुल १४७ भांगे हुए।
प्रत्याख्यान के १४७ भांगे जिसे प्राप्त हुए, वह पच्चक्खाण में कुशल है, शेष अकुशल है।
इन्हें ५ अणुव्रतों से गुणे तो ७३५ भांगे श्रावकों के होते हैं।

टीप्पणक → यहाँ श्रावक के योग्य ५ अणुव्रतों वि. व्रतों के समूह की के भांगों की देवकुलिका सूचित की गई है। ये देवकुलिकाएँ प्रत्येक व्रत के प्रति ~~अब~~ उपर्युक्त ६ भांगों से (दुविहं तिविहेणं वि.गा. १५८-२ में बताए हुए), २१ भांगों से (इन ६ भांगों को मन-वचन-काया और करण-कारण से गुणा करने पर), ९ भांगों से (तिविहं तिविहेण वि. भगवती में कहे हुए) और ४९ भांगों से (९ भांगों को मन-वचन-काया और कृत-कारित-अनुमति से गुणा करने पर) निष्पन्न होती है। इसकी करणगाथा-
एमवए छब्भंगा तहेगवीसा नवेव इगुवण्णा। एगाहियत्तगुणिआ तेण जुया वयसमं भंगा॥
शिष्य के अनुग्रह के लिए इस गाथा की संक्षेप में व्याख्या करते हैं - स्थूलप्राणातिपात-विरमणादि एक व्रत में ६, २१, ९, ४९ भांगे होते हैं। २ वि. व्रतों के भांगे की संख्या जानने के लिए उत्तरार्द्ध से करण कहते हैं - 'एगाहियत्तगुणिआ' यानि उन ६ वि. राशि की अवधि में स्थापना करे। उस फिर एक से अधिक ऐसी उसी राशि से उसे गुणा करे अर्थात् ६, २१, ९, ४९ को ७, २२, १०, ५० से गुणे। 'तेण जुया' उस राशि को उससे युक्त करे अर्थात् गुणने के बाद जो उत्तर आए उसमें वे ही ६, २१, ९, ४९ जोड़े। तब सभी भांगों की संख्या आती है। कितनी बार यह करण करे - 'वयसमं' ~~जिस~~ व्रत के भांगे विवक्षित हो, उतनी बार यह करण करे; यह स्थूलता से कहा है (जितने) किंतु एकव्रत के भांगों की संख्या हमने पहले ही अवधि में स्थापित की थी इसलिए विवक्षित व्रतों से १ कम बार गुणा करना।
यह करण गाथा का अक्षरार्थ हुआ। अब भावार्थ कहते हैं - एकव्रत के ६ भांगे तो २ व्रत

के लिए 6×7 (एकाधिकेन तेन गुण्यते) = 42 +6 (तेन युक्त) = 48। 3 व्रत- (48×7)+6 = 342। 4 व्रत - (342×7) + 6 = 2400। 5 व्रत - (2400×7)+6 = 16806। एक व्रत के 6 भांगों से 5 व्रत के (द्विकसंयोग, त्रिकसंयोग वि. सब मिलाकर) 16806 Total भांगे होंगे।

ऐसे 21 भांगों के पक्ष में एक व्रत- 21 भांगे। 2 व्रत के (21×22)+21=483। 3 व्रत- (483×22)+21=10647। 4 व्रत- (10647×22)+21 = 234255। 5 व्रत- (234255×22)+21 = 5153631 भांगे।

ऐसे 9 एक व्रत- 9 भांगे। 2 व्रत- (9×10)+9 = 99। 3 व्रत- 999। 4 व्रत- 9999। 5 व्रत= 99999 भांगे।

ऐसे एक व्रत- 49 भांगे। 2 व्रत- (49×50)+49 = 2499। 3 व्रत- 124999। 4 व्रत- 6249999। 5 व्रत- 312499999।

यदि 12 व्रतों के भांगों की संख्या की जिज्ञासा होगी तो ऐसे और 7 बार ये करण करना जिससे 6 भंग पक्ष में 12 व्रतों के 1384128700 भांगे।

21 " " " - 1285500263104921 5

अथवा 1285500036310492 15 (अन्य प्रत में)।

9 भंग पक्ष में 12 व्रतों के 999999999999 भांगे।

49 " " 244140624999999999999।

9. इस गाथा से तो विवक्षित व्रतों के सभी भांगों की संख्या ही आती है। किंतु जो एकसंयोग-द्विकसंयोग वि. भांगों की रचना के क्रम से जो देवकुलिका की रचना होती है, वह कैसे आती है?

उ. उसके लिए भी वृद्धों द्वारा कहा है -

एगाई वयतुल्ला उवरुवरिं पक्खिवे चरमवज्जा।
छच्छक्कगगुणिआणं गुणकारा होंति नायव्वा॥

जितने व्रतों की विवक्षा की जाए, एकादि उतनी संख्या एक-के ऊपर एक रखी जाए। eg. 5 व्रत की विवक्षा करें तो स्थापना- | 5 | 4 | 3 | 2 | 1 | अंतिम संख्या को छोड़कर बार-बार ऊपर-ऊपर की संख्या में नीचे वाली संख्या ~~जोड़ी~~ डाली जाए। ~~eg. ऊपर के 5 को छोड़कर नीचे की संख्याएँ जोड़ - 1+2+3+4=10~~ 4 की जगह 10 लिखें- | 5 | 10 | 3 | 2 | 1 |।

~~फिर 5 और 10 को छोड़कर नीचे की संख्या जोड़ 1+2+3=6~~

eg. ~~अंतिम 5 को छोड़कर~~ नीचे की संख्या 1, 2 में डालने पर वहाँ 3, 3 को 3 में डालने पर 6, 6 को 4 में डालने पर 10 हुए। अंतिम 5 को छोड़ दिया गया। ऐसे एकबार ऊपर-ऊपर की संख्या में डालने पर स्थापना- | 5 | 10 | 6 | 3 | 1 |। वापस से नीचे 1 ऊपर 3 में डालने पर 4, 4 को 6 में डालने पर 10, ऊपर के 5 और 10 को छोड़ दिया जाता है। स्थापना- | 5 | 10 | 10 | 4 | 1 |

पुनः नीचे से 1 को 4 में डालने पर 5। ऊपर के 5, 10, 10 को छोड़कर स्थापना- | 5 | 10 | 10 | 5 | 1 |

अब 6 के गुणाकारों को left side में रखें। 5 के left में 6, 10 के left में 6×6=36, दूसरे 10 के left में 36×6=216, 5 के left में 216×6=1596, 1 के left में 1596×6=7776। स्थापना-

6	5
36	10
216	10
1596	~~10~~ 5
7776	1

अब इन्हें परस्पर पर गुणाकार कर Right में लिखें। eg. 6×5=30. वि.।

स्थापना -

6	5	30
36	10	360
216	10	2160
1296 1596	5	~~1596~~ 6480
7776	1	7776

30
360
2160
6480
+7776
16806

यह दैवकालिका की रचना हुई। इसका भावार्थ - 5 व्रतों में 1-1 संयोग के 5 होंगे। प्रत्येक 6 भांगे होंगे, तब Total 30 भांगे। द्विकसंयोग 10 होंगे, प्रत्येक के 36-36 भांगे होंगे, तब Total 360 भांगे। त्रिकसंयोग 10 होंगे, प्रत्येक के 216 भांगे, Total 2160 भांगे। चतुःसंयोग 5 होंगे, प्रत्येक के ~~1296~~ भांगे, Total 6480। पंचसंयोग 1 होगा, उसके 7776 भांगे। सभी को जोड़ने पर एक व्रत के 6 भांगे अनुसार 5 व्रत के Total 16806 भांगे होंगे।
ऐसे ही एक व्रत के 9, 21, 49 भांगे अनुसार भी 12 व्रत तक का विचार करना।

हरिभद्रीय वृत्ति अव. गा. 1 (प्रक्षिप्त)

5 अणुव्रतों की अपेक्षा से एक संयोग-द्विकसंयोगादि का परिमाण -
5 अणुव्रतों के एक संयोग 5, द्विकसंयोग 10, त्रिकसंयोग 10, चतुःसंयोग 5 और पंचसंयोग 1 होता है।

* एकसंयोग - 1, 2, 3, 4, 5।
द्विक - 1-2, 1-3, 1-4, 1-5, 2-3, 2-4, 2-5, 3-4, 3-5, 4-5।
त्रिक - 1-2-3, 1-2-4, 1-2-5, 1-3-4, 1-3-5, 1-4-5, 2-3-4, 2-3-5, 2-4-5, 3-4-5।
चतुः - 1-2-3-4, 1-2-3-5, 1-2-4-5, 1-3-4-5, 2-3-4-5।
पंच - 1-2-3-4-5।

गा. 1-4 (प्रक्षिप्त)

उपर्युक्त 16806 भांगे की विस्तार से विचारणा। उत्तरगुण स्वीकारने वाले का 1 भेद + अविरत सम्यग्दृष्टि का 1 भेद, ऐसे श्रावकों के कुल 16808 भेद।

प्रव. आनुषंगिक कहा गया। अब प्रकृत श्रावक धर्म की विधि कहते हैं (देखें [99] पर अव.)। श्रावक धर्म का मूल सम्यक्त्व है इसलिए सम्यक्त्व की विधि कहते हैं -

सूत्र समणोवासओ पुव्वामेव मिच्छत्ताओ पडिक्कमइ, संमत्तं उवसंपज्जइ, नो से कप्पइ अज्जप्पभिई अन्नउत्थिए वा अन्नउत्थियदेवयाणि वा अन्नउत्थियपरिग्गहियाणि वा अरिहंतचेइयाणि वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुव्विं अणालत्तएणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पयाउं वा नन्नत्थ रायाभिओगेणं गणाभिओगेणं बलाभिओगेणं देवयाभिओगेणं गुरुनिग्गहेणं वित्तीकंतारेणं [से य संमत्ते पसत्थसमत्तपोहणियकम्माणुवेयणोवसमखयसमुत्थे पसमसंवेगाइलिंगे सुहे आयपरिणामे पन्नत्ते]

श्रमणोपासक श्रावक पहले ही यानि श्रमणोपासक बनता हुआ ही मिथ्यात्व से पीछे हटता है और सम्यक्त्व स्वीकारता है। अतः उसे आज से (अज्जप्पभिई) चरक-परिव्राजक-भिक्षु-भौतादि अन्यतीर्थिकों को अथवा रुद्र-विष्णु-बुद्ध वि. अन्यतीर्थिक के देवों को अथवा अन्य तीर्थिक द्वारा गृहण की हुई अरिहंत की प्रतिमाओं को (ex. वीर-भद्र-महाकाल वि. अरिहंत की प्रतिमाएँ भौत ने गृहण की हुई हैं, दिगंबर द्वारा गृहण की हुई प्रतिमाएँ वि.) वंदन करने या नमस्कार करना नहीं कल्पता है।

प्र. वंदन या नमस्कार करने में क्या दोष है?

उ. उनके अन्य भक्तों का मिथ्यात्व स्थिर होना वि. दोष है।

तथा पहले वे न बुलाए तो उनके साथ एक बार या बार बार बोलना नहीं कल्पता।

प्र. इसमें क्या दोष है? उ. ① वे अत्यंत तपे हुए अयोगोलक समान बैठना वि. करे तो श्रावक को कर्मबंध।

② इस प्रीति से वे बार-बार घर आए। इससे शास्त्र के सार को न जानने वाले श्रावक के स्वजन या परिजन उनके साथ संबंध करते हैं।

यदि वह पहले बुलाए तो निंदा के भय से कैसे हो? वि. बात करे क्योंकि यदि बात न करे तो 'यह अहंकारी है' वि. निंदा हो।

तथा उन्हें घेवर वि. अशन, द्राक्ष वि. के पानी रूप पान, ककड़ी वि. खादिम और कक्कोल-लौंग वि. स्वादिम देना या बार-बार देना (अनुप्रदान) कल्पता नहीं है।

प्र. क्या सर्वथा नहीं कल्पता है? उ. नहीं राज अभियोग वि. सिवाय नहीं कल्पता है। राजा की जबरजस्ती, गण यानि लोक समुदाय का अभियोग, देवता के अभियोग से, गुरु के निग्रह से, वृत्ति यानि आजीविका का छेद होने वाला हो तो। (आग्रह)

राजाभियोग का दृष्टांत – हस्तिनापुर x जितशत्रु x 8000 सेठों में मुख्य कार्तिक सेठ श्रावक था x वहाँ एक परिव्राजक मासक्षमण के पारणे मासक्षमण करता है x सभी लोग आदर करते हैं, कार्तिक नहीं x वह द्वेष करता हुआ उसके छिद्र ढूँढता है x एकदा राजा द्वारा बुलाने पर पारणे में आने को मना करता है x बहुत विनंती करने पर बोला - यदि कार्तिक मुझे परोसेगा तो मैं आऊँगा x राजा कार्तिक के घर गया x कार्तिक - कहो, क्या काम है? x राजा - परिव्राजक को तू परोसना x कार्तिक - हमें कल्पता नहीं है किंतु आपके देश में मैं रहता हूँ इसलिए करूँगा x कार्तिक ने सोचा - यदि दीक्षा ले ली होती तो ऐसा नहीं होता x वह परोसता है तब परिव्राजक नाक पर उंगली लगाता है - तुझे झुकना पड़ेगा! x कार्तिक ने निर्वेद प्राप्त कर 8000 के परिवार सहित मुनिसुव्रत स्वामी के पास दीक्षा ली x 12 अंग पढ़े x 12 साल दीक्षा पालकर सौधर्म कल्प में इंद्र बना x वह परिव्राजक इस आभियोगिक कर्म से एरावण हाथी बना x शक्र को देखकर भागने लगा x शक्र पकड़कर चढ़ गया x उसने 2 सिर किए तो शक्र भी 2 हुए x जितने सिर किए, उतने शक्र बने x वह भागने लगा x शक्र के प्रहार करने पर स्थिर हुआ।

ऐसे राजाभियोग से देता हुआ सम्यक्त्व का अतिक्रमण नहीं करता। कार्तिक जैसे तो सत्त्वशाली कितने होते हैं जो दीक्षा ले सके।

गणाभियोग से वरुण का दृष्टांत - वरुण 12 व्रतधारी श्रावक था x कोणिक - चेटक राजा के रथ मुशल युद्ध में उसकी इच्छा न होने पर भी मंत्री वि. सबने उसे युद्ध में जोड़ा x ऐसे कोई भी श्रावक गणाभियोग से भक्त देता हुआ भी धर्म अतिक्रमण नहीं करता।

बलाभियोग भी same।

देवताभियोग - एक गृहस्थ श्रावक बना x बहुत समय से पूजा करने वाले वाणव्यंतरी वि. की पूजा करना उसने छोड़ दिया x एक वाणव्यंतरी गुस्सा हुई x व्यंतरी ने गाय चराने गए हुए उसके पुत्र का गाय सहित अपहरण किया x उसने व्यंतरी को याद किया x श्रावक तिरस्कार करती हुई बोली - बोल, अब मेरी पूजा करेगा या नहीं ? x श्रावक - तू जिनप्रतिमा के पास में रहे तो पूजा करूँ x देवी - ठीक है x श्रावक ने उसकी प्रतिमा जिनप्रतिमा के पास रखी x व्यंतरी ने पुत्र - गायों को छोड़ा x
ऐसे सत्त्वशाली कितने होते हैं जो पुत्र जाने के बाद भी व्यंतरी के सामने शर्त करे। अतः देवताभियोग से दान वि. देते हुए भी अतिचार नहीं लगता।

गुरुनिग्रह - एक बौद्ध का पुत्र श्रावक की पुत्री मांगता x श्रावक मना करता है x वह माया से श्रावक बनता है किंतु बाद में वास्तव में श्रावक बना x श्रावक ने पुत्री का विवाह किया x दोनों अलग घर में रहने लगे x एकदा माता-पिता ने बौद्ध भिक्षु के लिए भोजन तैयार कर उसे जबर जस्ती वहाँ भेजा x भिक्षु ने मंत्रित फल उसे दिया x उसने खाया x वाणव्यंतरी से अधिष्ठित होकर घर आया और पत्नी को भिक्षु को भोजन देने कहा x दूसरे दास-दासी-स्वजन भिक्षु के लिए भक्त बनाने लगे x पत्नी ने जाकर आचार्य

को कहा x मा. ने मंत्रित चूर्ण दिया x उसने पानी में मिलाकर ~~चूर्ण~~ पिलाया x उससे वाणव्यंतरी भाग गई x स्वस्थ हुआ पति ने पूछा - ये कैसे हुआ? x पत्नी ने पूरी बात कही तब उसने भिक्षुओं को भोजन देने का मना किया x
अन्य मत - पत्नी ने मदनफल के बीज से उसे उल्टी कराई x वह स्वस्थ हुआ x तैयार भोजन साधुओं को दिया xx।
ऐसे समर्थ आचार्य कितने होते हैं, जो आपत्ति से बचाए ? x अतः अन्यतीर्थिकों को अशनादि देना नहीं। (गुरु यानि माता-पिता के आग्रह से)

वृत्तिकांतार - यह दृष्टांत पारिष्ठापनिका निर्युक्ति में है (भाग ६ - पृ.)।

प्र. उन्हें अशनादि देने से क्या दोष है? उ. ① उनके भक्तों का मिथ्यात्व स्थिर होता है।
② धर्मबुद्धि से दो तो सम्यक्त्व मलिन होता है।
③ आरंभादि दोष।
यदि करुणा या अनुकंपा से देना हो तो दे सकते हैं। क्योंकि दीक्षा लेने की इच्छा वाले ऐसे तीर्थंकर भी अनुकंपा से सांवत्सरिक दान देते हैं।

सूत्र संमत्तस्स समणोवासएणं इमे पंचातिचारा जाणितव्वा ण समायरियव्वा, तंजहा - संकाकंखा वितिगिच्छा परपासंडपसंसा परपासंडसंथवोत्ति।

श्रावक द्वारा सम्यक्त्व के ५ अतिचार जानने योग्य हैं किंतु आचरने योग्य नहीं हैं।
अतिचार = मिथ्यात्वमोहनीय के उदय से होने वाले आत्मा के अशुभ परिणाम।
1. शंका = मति की दुर्बलता से सम्यग् अवधारण न होने वाले, अत्यंत गहन ऐसे अरिहंत प्रणीत धर्मास्तिकायादि पदार्थों में संशय। अर्थात् 'यह ऐसा है या नहीं' ऐसी शंका।

शंका २५. - देशशंका - किसी एक भाग में द्रव्य. आत्मा असंख्य प्रदेशात्मक होगी या नहीं अथवा निरवयव होगी।

सर्वशंका - सभी द्रव्य के समूह विषयक।

मिथ्यादर्शन ३५. - अभिगृहीत, अनभिगृहीत, संशय। उसमें संशय मिथ्यात्व ही है। कहा गया है -

पयमक्खरं च एक्कं जो न रोएइ सुत्तनिद्दिट्ठं।
सेसं रोयंतो वि हु मिच्छद्दिट्ठी मुणेयव्वो॥

सूत्रोक्तस्यैकस्याप्यरोचनादक्षरस्य भवति नरः।
मिथ्यादृष्टिः सूत्रं हि नः प्रमाणं जिनाज्ञा च॥

~~एकस्मिन्नर्थे~~ एकस्मिन्नप्यर्थे सन्दिग्धे प्रत्ययोऽर्हति हि नष्टः।
मिथ्यादर्शनं तत्स चादिहेतुर्भवगतीनाम्॥

इसलिए मुमुक्षु को शंका रहित होकर 'जिनवचन सत्य ही है' ऐसा सामान्य से स्वीकार लेना चाहिए। (फिर युक्ति विचारना चाहिए)

संशयास्पदमपि सत्यमेव, सर्वज्ञाभिहितत्वात्, तदन्यपदार्थवत् ⇒ संशय वाले पदार्थ भी सत्य ही हैं क्योंकि जैसे अन्य पदार्थ सर्वज्ञ द्वारा कहे हुए सत्य हैं, तो वे भी सर्वज्ञ द्वारा कहे होने से सत्य होंगे। छद्मस्थ द्वारा सभी पदार्थों के स्वभाव का अवधारण मति की दुर्बलतादि दोषों से अशक्य है।

शंका में उदाहरण - माता ने राब उड़द डालकर बनाई × दो पुत्रों ने पाठशाला से आकर अंधेरे में राब पी × एक ने सोचा - ये काली-काली मक्खियाँ दिख रही हैं, शंका से उसे वमनुल्टी व्याधि हुई और मर गया × दूसरे ने सोचा - माता राब में मक्खी डाल ही नहीं सकती × अतः वह जीवित रहा।

2. कांक्षा = बुद्धादि द्वारा प्रणीत अन्य दर्शनों को ग्रहण करने की इच्छा। दो प्रकार -
देश कांक्षा - एक ही दर्शन की इच्छा जैसे. बौद्ध धर्म में चित्त जय बताया है, वही मुक्ति का प्रधान हेतु है इसलिए यह दर्शन भी अच्छा है।
सर्व कांक्षा - सभी दर्शन की इच्छा जैसे. कपिल, कणाद, अक्षपाद वि. सभी अहिंसा के प्रतिपादन में तत्पर हैं तथा लोक में क्लेश के प्रतिपादन में तत्पर न होने से सुंदर हैं।
अथवा इस भव में या परभव में फल की कांक्षा रखता है।
ऐकान्तिक और आत्यंतिक ऐसे, अव्याबाध ऐसे मोक्ष को छोड़कर अन्य कहीं भी कांक्षा नहीं करना चाहिए।

कांक्षा का उदाहरण - अश्व से हरण किए हुए राजा और समामात्य एक जंगल में पहुँचे x वहाँ फल खाए x राजा को लड्डु-पुड़ले वि. खाने की इच्छा x महत्व में पहुँचकर रसोइए को लोक प्रसिद्ध सभी वस्तु बनाने की आज्ञा की x खाने में कोई Disinterest न हो इसलिए भिक्षु वि. को जबरजस्ती बाहर निकाल दिया x कणकुंडग - भंडक वि. सब खाया x पेट में शूल होने से मरा x मंत्री ने ~~वमन~~ वमन - विरेचन किया, जिससे बच गया और भोगों को प्राप्त किया xx।
ऐसे कांक्षा से राजा मर गया।

3. विचिकित्सा यानि मति का विभ्रम, युक्ति और आगम से घटते पदार्थ में फल के प्रति संमोह होना। जैसे. बहुत क्लेश वाले इस बड़े तप का फल मुझे मिलेगा या नहीं इ?।

9. शंका और इसमें क्या अंतर है?

उ. शंका पदार्थ विषयक होती है जबकि यह विचिकित्सा क्रिया विषयक है।
जैसे. आत्मा है या नहीं (द्रव्य संबंधी) अथवा आत्मा नित्य है या अनित्य (गुण संबंधी)

शंका होती है और 'यह क्रिया मैं करता हूँ, इसका फल मिलेगा या नहीं?' यह विचिकित्सा है। मूल तो ये सभी मिथ्यात्वमोहनीय के उदय से होने वाले जीव के परिणाम विशेष हैं अतः बहुत ज्यादा सूक्ष्म दृष्टि यहाँ नहीं रखना।

यह विचिकित्सा भी नहीं करना चाहिए क्योंकि सर्वज्ञोक्तकुशल अनुष्ठान से फल मिलता ही है।

विचिकित्सा में उदाहरण- एक श्रावक नंदीश्वर द्वीप में यात्रा करने जा रहा था× तभी देवसंघसेन नामक मित्र ने उसे दिव्य गंध वाले द्रव्य प्राप्ति के उपाय पूछे× उसने आकाशगामिनी विद्या दी और कहा- स्मशान में विद्या सिद्ध करना, चार पाए वाला एक छींका लेना, खदिरवृक्ष से बनी शूली से उसे लटकाना, उसमें बैठना, नीचे जलते हुए अंगारे रखना, 108 बार विद्या का जाप कर छींके का एक पाया काटना, 108-108 बार जाप कर दूसरा-तीसरा-चौथा पाया काटना, चौथा पाया काटेगा तब छींका आकाश में उड़ने लगेगा× मित्र ने विद्या ग्रहण की और कृष्णचौदस को रात्रि में स्मशान में विद्या सिद्ध करने लगा× तभी आरक्षकों से भागते हुए एक चोर वहाँ आया× सुबह पकड़ेंगे ऐसा सोचकर आरक्षक स्मशान को घेरकर रहे× चोर ने घूमते हुए विद्यासाधक को देखा× पूछने पर कहा- विद्या साध रहा हूँ× चोर- तुझे किसने दी?× मित्र-श्रावक ने× चोर- ये धन ले और विद्या दे× मित्र को चित्तविभ्रम हुआ- मुझे विद्या सिद्ध होगी या नहीं? अतः चोर को विद्या दे दी× चोर ने सोचा- श्रावक तो कीड़ी को भी पीड़ा नहीं करता तो ऐसा झूठ तो बोल नहीं सकता, ये विद्या सत्य ही है× ऐसे सिद्ध करना शुरू किया× विद्या सिद्ध हुई× मित्र को सुबह आरक्षकों ने चोर मानकर पकड़ा× चोर ने आकाश में उड़कर लोगों को डराया जिससे लोगों ने उसे छोड़ा× दोनों श्राद्ध हुए।

ऐसे निर्विचिकित्सा वाला होना चाहिए।

अथवा विचिकित्सा यानि विद्वानों की जुगुप्सा / विद्वान् यानि संसार के स्वभाव को जानने वाले और समस्त संग त्याग करने वाले साधु / अतः साधुओं की जुगुप्सा - निंदा / जै. वे स्नान न करने से पसीने और मैल से दुर्गंधी शरीर वाले होते हैं, अतः उनकी निंदा करना कि यदि अचित्त जल से नहाते तो क्या दोष होता ! वि. / अचित्त जल से भी साधुओं को स्नान नहीं करना चाहिए क्योंकि यह शरीर ही परमार्थ से अशुचि है /

जुगुप्सा में उदाहरण - एक श्रावक गाँव की सीमा पर रहता था x उसकी पुत्री के विवाह में साधु आए x उसने पुत्री को कहा - हे पुत्रि ! साधुओं को दोरा x वह सुशोभित होकर दोराती है x तभी उसे साधु के मैल की गंध आई x उसने सोचा - भ. ने निरवद्य धर्म कहा है तो यदि ये प्रासुक पानी से नहाए, उसमें क्या दोष है ? x वह इस पाप की आलोचना - प्रतिक्रमण किए बिना मरकर राजगृह में वेश्या के गर्भ में आई x गर्भ में आने पर ही अरति हुई x बहुत उपायों से भी गर्भ गिरा नहीं x वेश्या ने जन्म होने पर तुरंत वन में छोड़ दिया x गंध से वन वासित होता है x भ. को वंदन करने श्रेणिक उधर से निकलता है x उसकी सेना गंध को सहन नहीं कर पाती x ब उसके पूछने पर सैनिक ने कहा - वन में पड़ी एक बालिका की यह दुर्गंध है x जाकर देखी और कहा - भ. को सबसे पहले यही पुछूँगा x श्रेणिक के पूछने पर भ. ने वृत्तांत कहा x श्रेणिक - इस ये कैसे सुख-दुःख अनुभवेगी ? x भ. - सब इसका यह कर्म पूरा हो गया है, यह तेरी पटरानी बनेगी, 8 सात बार तू तेरी रानियों के साथ पाँसें (Dice) से खेलेगा, इसमें तू हारेगा तब तेरी पीठ पर बैठकर जो स्त्री हंस जैसी गति करे, उसे तू यह बालिका समझना x श्रेणिक वंदन कर गया x

दुर्गंध रहित उस बालिका को एक झोंपड़ी घर ले गई x वह युवान् हुई x एकदा वह कौमुदी महोत्सव में माता के साथ गई x अभय और श्रेणिक गुप्त वेश में महोत्सव देख रहे थे x तभी उसके संगस्पर्श से आसक्त हुए श्रेणिक ने स्वयं की नाममुद्रा उसके कपड़े की दशी से बांधी x अभय को कहा - मेरी नाममुद्रा चोरी हो गई है x अभय ने

द्वार पर मनुष्य रखे x सभी को देख-देखकर जाने देते हैं x वह स्त्री पकड़ी गई x रूपवान् होने से राजा ने उससे विवाह किया x

एकदा राजा रानियों के साथ अक्षों से खेलता है x उसमें शर्त थी कि जीतने वाला हारने वाले की पीठ पर बैठे x अन्य रानियाँ जीती तो भी सुकृत्य में उत्पन्न होने के कारण राजा की पीठ पर जयसूचक वस्त्र रखती है किंतु बैठती नहीं है x यह रानी वेश्या की पुत्री होने से पीठ पर वस्त्र रखकर बैठ गई x राजा भ. के वचन याद आने पर हँसने लगा x हँसने का कारण पूछने पर राजा ने वृत्तान्त कहा x उस रानी ने वैराग्य से दीक्षा की आज्ञा माँगी x श्रेणिक ने अनुज्ञा दी x उसने दीक्षा ली।

5. परपाषंडप्रशंसा = अस्वर्ग्य प्रणीत व्रती सिवाय व्रतियों की प्रशंसा यानि स्तुति।

परपाखंड सामान्य से 363 हैं। क्रियावादी 180
अक्रियावादी 84
अज्ञानी 67
वैनयिक 32
363

क्रियावादी — ~~जीव~~ कर्ता बिना क्रिया संभव नहीं है इसलिए आत्मा में समवाय संबंध से क्रिया मानने वाले क्रियावादी हैं। ये आत्मादि का अस्तित्व मानते हैं अर्थात् 'अस्ति' क्रिया मानते हैं।

जीव-अजीव-आश्रव-संवर-बंध-निर्जरा-पुण्य-पाप-मोक्ष 9 तत्व में प्रत्येक के २०-२० भेद से कुल 180 भेद होंगे। इन्हीं १-१ भेद को मानने वाले 180 क्रियावादी हैं। (यहाँ जीव तत्व के २० भेद बताते हैं -)

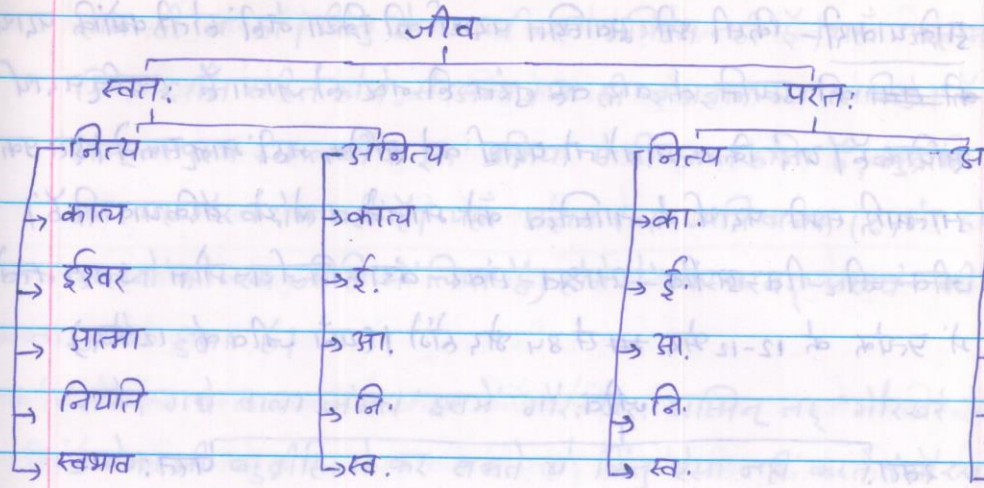

यहाँ पहला भेद – जीव काल से स्वतः नित्य है अर्थात् जीव-आत्मा स्वरूप से विद्यमान है और काल से नित्य है। (कालवादी)

दूसरा भेद – जीव ईश्वर रूप से स्वतः नित्य है अर्थात् जीव-आत्मा ईश्वर रूप में ही विद्यमान और नित्य है। (ईश्वरवादी)

तीसरा भेद – जीव आत्मा (रूप) से स्वतः नित्य है अर्थात् 'पुरुष एव इदं सर्वं' यह पूरा जगत् पुरुष रूप ही है इत्यादि जानना। (आत्मवादी)

चौथा भेद – नियतिवादी (जीव नियति के अनुसार ही क्रिया करता है वि.)

पाँचवाँ भेद – स्वभाववादी (जीव स्वभावानुसार ...)

ऐसे ही जीव को इस-इस रूप से अनित्य मानने वाले। (क्षणिकवादी)

ऐसे ही जीव को परतः नित्य-अनित्य मानने वाले। परतः यानि पर उपाधि से। उ.ह्रस्वत्व दीर्घत्व रूप पर उपाधि से विद्यमान है, दीर्घत्व ह्रस्वत्व रूप पर उपाधि से विद्यमान है। ऐसे ही आत्मा स्वरूप से नहीं जान सकते किंतु घर-पर में आत्मा नहीं है, उससे भिन्न ही कोई आत्मा जीव में है, ऐसे आत्मा पर की उपाधि से ही जान सकते हैं। ऐसा इनका मत है।

अक्रियावादी – किसी भी अवस्थित पदार्थ की क्रिया नहीं होती क्योंकि पदार्थ ~~की सत्ता~~ की उत्पत्ति के बाद वह तुरंत ही नष्ट हो जाता है अर्थात् पदार्थ क्षणिक है। यदि क्रिया मानो तो पदार्थ को क्षणिक नहीं मान सकते। इस प्रकार आत्मादि सभी पदार्थ के नास्तित्व को मानने वाले ये अक्रियावादी हैं।

जीव-अजीव-आश्रव-संवर-बंध-निर्जरा-मोक्ष इन 7 तत्त्वों में प्रत्येक के 12-12 भेद ~~से~~ से 84 भेद होंगे। (यहाँ जीव के 12 भेद)

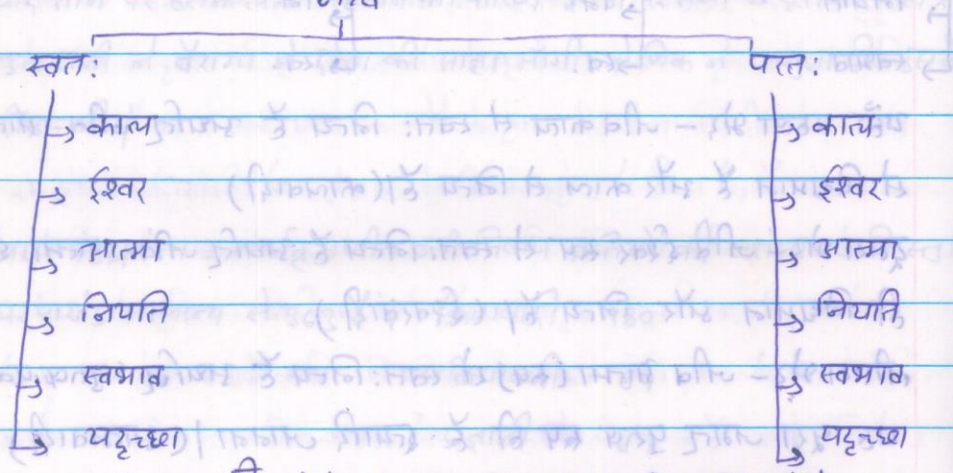

आत्मा की सत्ता ही न होने से नित्य-अनित्य भेद नहीं होंगे।

पहला भेद – जीव स्वतः काल से नहीं है अर्थात् जीव स्वरूप से विद्यमान नहीं है। ऐसे ही स्वतः 6 भेद। परतः 6 भेद। कुल 12। 7 तत्त्वों के 84 भेद।

अज्ञानिक – कुत्सित-अहितकर ज्ञान वाले।

प्र. यह टीका रचने का प्रयास लघु रूप है तो यहाँ 'ज्ञानं नास्ति येषां इति अज्ञानः' ऐसा बहुव्रीहि समास करने से लाघव होता किंतु पहले 'न ज्ञानं इति अज्ञानं' ऐसा नञ् तत्पुरुष किया, फिर मतु अर्थ में इक प्रत्यय लगाकर 'अज्ञानिक' पद बना, ऐसा गौरव क्यों किया?

उ. बहुव्रीहि समास करते तो 'ज्ञान का अभाव' ऐसा अर्थ होता अर्थात् जिनमें

ज्ञान ही न हो। किंतु ऐसा अर्थ यहाँ अभिप्रेत नहीं है। यहाँ अज्ञान यानि मिथ्यादर्शन सहित होने से अन्य ज्ञान ही इस अज्ञान रूप अभिप्रेत है। ऐसा अर्थ नञ् तत्पुरुष + मत्वर्थीय इक' प्रक्रिया से ही प्राप्त होता है, बहुव्रीहि से नहीं। अतः यह गौरव दोष नहीं है। यहाँ अज्ञान शब्द जाति वाचक (67 भेद होने से 67 अज्ञानों को एक जाति में लिया है) होने से 'गौरखरवद् अरण्यं' की तरह प्रयोग हुआ है।

'सफेद गधे वाला जंगल' इसमें गौरः खरः यस्मिन् तद् 'गौरखरं अरण्यं' प्रयोग भी बहुव्रीहि से कर सकते थे किंतु ऐसा नहीं करते। 'गौरखर' शब्द जातिवाचक लेकर मत्वर्थीय प्रत्यय लगाकर 'गौरखरवद् अरण्यं' ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है। ऐसे ही 'अज्ञानिक' पद की सिद्धि भी समझना।

अथवा अज्ञानेन चरन्ति अथवा अज्ञान रूप प्रयोजन वाले (अर्थात् अज्ञान को ही कल्याणकारी मानने वाले)। ये विचार किए बिना को गए कर्मबंध की निष्फलता को मानते हैं। [अर्थात् अज्ञानिक ऐसा कहते हैं कि ज्ञान कल्याणकारी नहीं है क्योंकि ज्ञान हो तो कभी विरुद्ध प्ररूपणा संभव होने से विवाद होता है, विवाद से चित्त में कलुषता पैदा होती है, कलुषता से दीर्घ संसार होता है। किंतु यदि अज्ञान हो तो ~~अज्ञान~~ अहंकार भी नहीं होता और कलुषता भी नहीं होती इसलिए कर्मबंध भी नहीं होता।

जो कर्मबंध विचार कर किया जाता, उसका विपाक भयंकर होता है। इससे उसे अवश्य भोगना पड़ता है क्योंकि विचारने से तीव्र भाव पूर्वक बंध होता है। जो कर्मबंध बिचारे बिना होता है, मात्र वचन-काया से होता है, उसका फल अवश्य नहीं भोगना पड़ता। ~~इसका फल~~ शुद्ध अध्यवसाय से ही दूर जाता है। इसलिए अज्ञान ही कल्याणकर है (वह कर्म) क्योंकि अज्ञान से असंचिंत्यकृत कर्मबंध यानि बिचारे बिना किया हुआ कर्मबंध निष्फल होता है।]

जीवादि 9 तत्त्व + उत्पत्ति, ऐसे कुल 10 तत्त्व हैं। इनमें जीवादि 9 में प्रत्येक के 7-7 भेद, कुल 63 + उत्पत्ति के 4 भेद = 67 भेद होते हैं।

(ब जीव के 7 भेद –)

जीव

सत्त्व | असत्त्व | सत्त्वासत्त्व | अवाच्यत्व | सत्-अवाच्यत्व | असत्-अवाच्यत्व | सत्-असत्-अवाच्यत्व

उत्पत्ति के प्रथम 4 भेद ही होंगे क्योंकि पदार्थ के अलग-अलग अवयवों की कल्पना तो उत्पत्ति के बाद ही होती है। उत्पत्ति के समय अलग-अलग अवयवों की कल्पना नहीं कर सकते।

पहला भेद – जीव है, ऐसा कौन जानता है अथवा ऐसा जानकर क्या काम है? अर्थात् किसी के भी पास विशिष्ट ज्ञान न होने से कोई नहीं जानता।

ऐसे ही अन्य भेद जानना। उत्पत्ति भी सत् की होती है या असत् की या सदसत् की या अवाच्य की? ऐसा कोई नहीं जानता।

वैनयिक – विनयेन चरंति अथवा विनयः प्रयोजनं एषां इति। मात्र विनय को ही कल्याणकारी मानने वाले। ये वेश-आचार-शास्त्र वि. धारण नहीं करते, मात्र विनय को ही स्वीकारते हैं।

देव, राजा, साधु, ज्ञाति (स्वजन), स्थविर (वृद्ध), अधम, माता और पिता; इन 8 आठों का मन से, वचन से, काया से और देश-काल उचित दान से इन 4 रूपों से विनय करना चाहिए। 8 × 4 = 32।

इन 363 पाखंडियों की प्रशंसा नहीं करना चाहिए कि ये पुण्यशाली हैं, इन्होंने भी जन्म सफल किया वि.। क्योंकि ये भी मिथ्यादृष्टि हैं।

परपाखंडप्रशंसा में उदाहरण – पाटलिपुत्र में चाणक्य × चंद्रगुप्त ने बौद्ध भिक्षुओं की वृत्ति का हरण किया × वे भिक्षु इसे धर्म सुनाते हैं × राजा मौन होकर चाणक्य की ओर देखता है ×, किंतु प्रशंसा नहीं करता × इसलिए राजा कोई दान नहीं देता × भिक्षु चाणक्य की पत्नी की सेवा करने लगे × उसने चाणक्य को प्रशंसा की प्रतिज्ञा कराई × बाद में भिक्षुओं ने राजा को धर्म कहा × चाणक्य – बहुत सुंदर कहा × इससे राजा ने आजीविका और दूसरा भी दान दिया ×

दूसरे दिन चाणक्य ने पूछा – क्यों दान दिया ? × राजा – आपने प्रशंसा की इसलिए × चाणक्य – मैंने प्रशंसा नहीं की थी, मैंने तो ऐसा कहा था कि सभी आरंभों में प्रवृत्त ये कैसे लोगों को विश्वास में लेते हैं अर्थात् ठगते हैं ? × फिर राजा ने दान बंद किया × ।

ऐसे सत्त्व वाले कितने होते हैं इसलिए उनकी प्रशंसा नहीं करना।

5. परपाखंडसंसत्त स्तव = संस्तव यानि परिचय। परपाखंडियों के साथ रहना, भोजन करना, बात करना वि.।

एक साथ रहने में उनकी प्रक्रिया सुनने से, क्रिया देखने से और पूर्वभव में बार-बार अभ्यस्त होने से सहकारी कारण प्राप्त होने से मिथ्यात्व का उदय होता है और मिथ्यात्व के उदय से दृष्टिभेद होता है। अतः अतिचार का हेतु होने से यह परपाखंड संस्तव आचरने योग्य नहीं है।

इसमें उदाहरण – वृत्ति कांतार में कहा। पारिष्ठापनिका निर्युक्ति में (भाग 5 पृ.))

ऐसे शंकादि सकल शल्य से रहित, सम्यक्त्ववाला शेष अणु अणुव्रत को स्वीकारने योग्य होता है। वे अणुव्रत स्थूलप्राणातिपातादि से निवृत्तिरूप हैं।

अब. इन अणुव्रतों का स्वरूप –

सूत्र थूलगपाणाइवायं समणोवासगो पच्चक्खाइ, से पाणाइवाए दुविहे पन्नत्ते, तं जहा- संकप्पओ य आरंभओ य, तत्थ समणोवासओ ~~संकप्पो~~ संकप्पओ जावज्जीवाए पच्चक्खाइ, नो आरंभओ, थूलगपाणाइवायवेरमणस्स समणोवासएणं इमे पंच अइयारा जाणियव्वा, तं जहा- बंधे वहे छविच्छेए अइभारे भत्तपाणवुच्छेए 1

स्थूल यानि बेइन्द्रियादि सकल लोक में प्रसिद्ध होने से ये स्थूल हैं। इनकी अपेक्षा से एकेन्द्रिय सूक्ष्म हैं क्योंकि इनमें विवाद (शंका) से जीवत्व की सिद्धि है। इन स्थूल जीवों के प्राण यानि इंद्रियादि। उनका अतिपात स्थूल-प्राणातिपात। इसका श्रावक प्रत्याख्यान करता है।

वह प्राणातिपात २ प्र. से कहा है - संकल्प से और आरंभ से। ~~उसमें~~ संकल्प से यानि मन से ब संकल्प कर मांस-हड्डी-चमड़ी-नख-वाल-दाँत वि. के लिए बेइंद्रिय वि. प्राणियों को मारते हुए को संकल्पज स्थूल प्राणातिपात होता है। और आरंभ से यानि हल, दाँतरड़ा वि. द्वारा खेतोंमें, कतलखानेमें वि. में शंख-चंदनक-कीड़ी-धान्य के कीड़े वि. का संघट्टा-परिताप-प्रहण।

इनमें श्रावक संकल्पज प्राणातिपात का यावज्जीव पच्चक्खाण कर सकता है किंतु करे ही ऐसा नियम नहीं है। आरंभज प्राणातिपात का त्याग नहीं करता क्योंकि आरंभ उसे अवश्य होता है।

प्र. ऐसे संकल्प से सूक्ष्म प्राणातिपात का भी श्रावक त्याग क्यों नहीं करता?

उ. क्योंकि ~~एकेन्द्रियादि~~ सूक्ष्म जीवें प्रायः दुष्परिहार हैं। श्रावक संकल्प से ही सचित्त पृथ्वादि का परिभोग करते हैं।

प्र. प्राणातिपात करने में कौन से दोष हैं? और न करने में कौन से गुण हैं?

उ. दोष में कोंकणक का उदाहरण - एक कोंकणग की पत्नी मर गई। उसे एक

छोटा पुत्र था × उसे दूसरा विवाह करने की इच्छा हुई किंतु पुत्र होने से कोई लड़की नहीं मिली × उसे मारने के लिए वह पुत्र को खिलाता है × बाण छोड़कर वापस लाने कहता है और दूर रहे पुत्र को पीछे से बींध देता है।
ऐसे मारने से नरकादि दोष हैं।

गुण में सप्तपरिक का दृष्टांत (भाग 1 Pg.) ।

गुण में दूसरा उदाहरण– उज्जयिनी में बच्चे थे × चोरों ने अपहरण किया × एकश्रावक के पुत्र को रसोईए ने खरीदा × रसोईए ने पुत्र को कहा - तू पक्षी को मारना, ऐसा कहकर पक्षी छोड़ दिए × किंतु वह श्रावकपुत्र पक्षी को नहीं मारता × रसोईया उसे मारने लगा × बच्चा रोने लगा × सुनकर राजा आया × उसने भी पक्षी मारने को कहा किंतु न माना × हाथी से डराने पर भी न माना × खुश होकर राजा ने बालक को भविष्य में अंगरक्षक बनाने रखा × एकदा आचार्य पधारे × उसने दीक्षा ली।

गुण में तीसरा उदाहरण – पाटलिपुत्र × जितशत्रु × चार बिद्या युक्त, श्रावक गुण से संपन्न क्षेम मंत्री था × मंत्री राजा का हितेच्छु था इसलिए अन्य खंडीराजा, गाँव के मुखिया वि. को अप्रिय था × उसके विनाश के उन्होंने मंत्री के आदमियों को दान-सन्मान देकर राजा को मारने भेजा × बीच में सैनिकों के पकड़ने पर बोले - हमें मंत्री ने राजा को मारने भेजा है × मंत्री - मैं सर्वजीवों का हित करता हूँ तो राजा का क्यों नहीं करूँ ? × फिर भी राजा ने उसे मारने की आज्ञा दी × राजा के बगीचे में कमलों वाली ~~उंडी~~ उंडी बावड़ी थी × उसमें मगर, ग्राह वि. भी थे × अतः राजा जिसे मारने की आज्ञा देता, उसे बावड़ी से कमल लाने को कहता × क्षेम मंत्री नवकार बोलकर 'मैं निरपराधी होऊँ तो देव सहाय करे' ऐसा सागार भक्त प्रत्याख्यान कर बावड़ी में उतरा × देव की सहाय से मगर की पीठ पर

बैठकर वह बहुत कपट त्याग * राजा ने खुश होकर क्षमा मांगी * फिर सब्ब शत्रुओं का निग्रह कर राजा ने मंत्री को वरदान माँगने कहा * किंतु बहुत रोकने पर भी उसने दीक्षा ली।

अतिचार रहित व्रत पालना चाहिए। श्रावक को ये ५ अतिचार जानना चाहिए किंतु आचरना नहीं चाहिए।—

1. बंध – २प. द्विपद का, चतुष्पद का। कारण से, निष्कारण। निष्कारण से बांधना श्रावक को कल्पता नहीं है।
सकारण बंध २प. निरपेक्ष, सापेक्ष। निरपेक्ष यानि बिल्कुल बन्धन-बन्धन न करे सके ऐसा निश्चल बांधना। सापेक्ष यानि सामान्य से बांधना, जिससे आग वि. लगने पर जल्दी खोल सके। श्रावक को बांधना ही पड़े तो ऐसे सापेक्ष बांधे। यह चतुष्पदों की बात की।
द्विपद में भी पुत्र वि. बदला न हो तो सापेक्ष बांधना। श्रावक को ऐसे द्विपद-चतुष्पद ग्रहण करना चाहिए कि जिन्हें बांधने की जरूर न पड़े।

2. वध – चाबुक वि. मारना। निष्कारण वध नहीं करना। सकारण २प. – निरपेक्ष, सापेक्ष। निरपेक्ष यानि किसी जीव को निर्दयता से मारना। सापेक्ष में श्रावक को पहले से पर्षदा में भय रखना चाहिए जिससे सब उससे डरते रहे और वध की जरूर न पड़े। तो भी मारना पड़े तो मर्मस्थान सिवाय चाबुक या रस्सी एक-दो वार मारे।

3. छविच्छेद – शरीर या अंगोपांग का छेद। निष्कारण नहीं कल्पता। सकारण में निरपेक्ष यानि निर्दयता से पैर, कान, नाक वि. काटे। सापेक्ष यानि गुमड़ा या घाव को काटे या जलाए।

4. अतिभार – श्रावक को पहले से ही ऐसी आजीविका नहीं करना जिसमें दूसरे से भार वहन कराना पड़े। यदि ऐसी आजीविका ही लेना पड़े तो हिपद-दास दासी स्वयं जितना भार उठा और रख सके उतना भार उठवाए। चतुष्पद में बैल, हाथी-घोड़े स्वाभाविक जितना भार उठाते हैं, उससे कुछ कम उठवाए। बैलों को गाड़ी-हल वि. से योग्य समय छोड़ देना चाहिए।

5. भक्तपानव्यवच्छेद – श्रावक को किसी के भी भक्तपान का व्यवच्छेद नहीं करना चाहिए, ~~जिससे~~ क्योंकि तीव्र भूख से जीव मर भी जाते हैं। निष्कारण नहीं कल्पता सकारण में अपेक्ष यानि किसी का रोग दूर करने अथवा किसी को सीधा करने सिर्फ वचन से बोले कि आज तुझे नहीं दूँगा। रोगादि हो तो उपवास कराए।

सभी जगह जयणा – स्थूल प्राणातिपात का अतिचार न लगे, ऐसे रहे। निरपेक्ष बंधादि में लोकनिंदा वि. दोष।

अब. दूसरा अणुव्रत –

सूत्र थूलगमुसावायं समणोवासओ पच्चक्खाइ, से य मुसावाए पंचविहे पन्नत्ते, तंजहा- कन्नालीए गवालीए भोमालिए नासावहारे कूडसाक्खिज्जे। थूलगमुसावायवेरमणस्स समणोवासएणं ..., तं जहा- सहस्सब्भक्खाणे रहस्सब्भक्खाणे सदारमंतभेए मोसुवएसे कूडलेहकरणे 2।

मृषावाद २५. स्थूल - अत्यंत स्थूल वस्तु विषयक।

सूक्ष्म – सभी वस्तु विषयक।

ये मृषावाद ५५. – कन्या विषयक- अभिन्न कन्या को भिन्न बोलना वि.।

गाय विषयक - अल्प दूध वाली गाय को बहुत दूध वाली बोलना

भूमि विषयक - अन्य की भूमि को स्वयं की कहना वि. । अथवा व्यवहार यानि Court Case में जब साक्षी देना हो, तब भूमि संबंधी झूठ बोले।
न्यासापहार - किसी की अमानत का अपहरण करना।
प्र. यें तो अदत्तादान होने से मृषावाद कैसे ? उ. वहाँ झूठ बोलते हुए को मृषावाद है।
कूटसाक्षित्व - रिश्वत या ईर्ष्या वि. से जब साक्षी बनाए तब झूठ बोले।
अविचारि विषयक मृषावाद का इसमें ही अन्तर्भाव है।

प्र. मृषावाद में क्या दोष हैं ? अथवा न करने में क्या गुण हैं ?
उ. कन्या को खंडित शील वाली सकन्या बोलने वाले को भोगांतराय कर्म बंधता है। सामने वाली कन्या आत्महत्या करती है वि. । ऐसे ही शेष भेदों में भी दोष जानना।
न्यासापहार में पुरोहित दृष्टांत (नमस्कार निर्युक्ति में भाग Pg:)

गुण में उदाहरण - एक कोंकणग श्रावक x घोड़ों के स्वामी ने उसे कहा - यदि घोड़े भागे तो मारकर रोकना x एक घोड़ा भागने पर श्रावक ने मारा x वह मर गया x घोड़े का स्वामी न्यायालय में ले गया x न्यायाधीश - कोई साक्षी है x घोड़े का स्वामी - इसका पुत्र ही है x पुत्र ने सत्य कहा x तब खुश हुए, उसकी पूजा की।

इस व्रत के ५ अतिचार -
1. सहसा ऽभ्याख्यान = असत् आरोप करना जै. तू चोर है अथवा परदारालंपट है इत्यादि
2. रहस्याभ्याख्यान = एकान्त में मंत्रणा करते लोगों के लिए कहे कि ये राज विरुद्ध होने के लिए यह-यह बात कर रहा है इ. है।
3. स्वदारामंत्रभेद = स्वयं की पत्नी ने विश्वास से उसकी कोई विशिष्ट अवस्था की बात की हो, उसे प्रगट करना।

4. मृषोपदेश = झूठा उपदेश देना।
5. कूटलेखक्रिया = असद्भूत लेख लिखना, अन्य व्यक्ति के Sign - अक्षर वि. लिखना।
इन ५ अतिचारों को करने से द्वितीयाणुव्रत में अतिचार लगता है।

इन ५ अतिचारों के अपाय - खोल यानि राजपुरुष विशेष, पर सहसा अभ्याख्यान सुने कि तू चोर है' और वह अभ्याख्येय पुरुष यदि सही में चोर हो तो उसे पकड़कर राजा से मराए या दंड कराए अथवा यदि वह सही न हो तो अभ्याख्यान करने वाले को ही पकड़कर दंड करे। अथवा अभ्याख्येय पुरुष भय से आत्म हत्या करे या अभ्याख्यान करने वाले को मारे। ऐसे ही अपाय रहस्याभ्याख्यान में भी। स्वदारमंत्रभेद में स्वयं की गुप्तबात उगट होने लज्जित पत्नी आत्म हत्या करे या पति को मारे। (दीपणक)

स्वदारमंत्र भेद में उदाहरण - मथुरा का एक व्यापारी यात्रा पर गया x उसके १२ वें साल पत्नी ने दूसरे पुरुष से संबंध बांधा x वह आया x पत्नी की परीक्षा करने रात में अज्ञात कार्पटिक वेश से घर गया x उस दिन दोनों साथ में भोजन करने वाले थे x कार्पटिक ने भोजन मंगा x पत्नी ने को खाने वि. ले जाने थे x कार्पटिक को कहा - तू मेरा काम कर तो भिक्षा दूँगी x उससे खाजे वि. ~~इस~~ उधार x प्रेमी के घर गई x वहाँ कहा - तू मेरे घर की रक्षा करना x वह वहीं छुपकर देखने लगा x सब जानकर निकल गया x दूसरे दिन बहुत ऋद्धि के साथ घर में प्रवेश करता है x स्वजन पूछते हैं - १२ वर्ष में क्या देखा वि. x अन्य बहाने से पत्नी की पूरी बात कहता है x पत्नी सुनकर समझ जाती है और आत्महत्या करती है।

मृषोपदेश में परिव्राजक दृष्टांत - एक परिव्राजक ने दरिद्र पुरुष को कहा - तू ऐसे दुःखी क्यों होता है? मैं तुझे पैसे दिलाता हूँ x दरि. - कैसे? x परि. - मैं इस व्यापारी की दुकान के बाहर बैठूँगा, तू जब वह व्यापारी अन्य के साथ लेने-देने में व्यस्त हो तब तू जाकर कहना - मैं आपको उधार पैसे दिए थे, वह दो x ऐसे रोज-रोज माँगना,

अन्य लोग भी रोज सुनेंगे, जब वह कहे कि मैंने कोई पैसे नहीं लिए, तब तू न्यायालय ले जाना, मैं साक्षी दूँगा × इसने पैसे ले लिए ही किया। (दीपक)
कूटलेखकरण में भैरवी और अन्य उदाहरण जानना (1)।

प्रश्न तीसरा अणुव्रत -

सूत्र थूलगं अदत्तादाणं समणोवासगो पच्चक्खाति, से य अदिन्नादाणे दुविहे पन्नत्ते, तं जहा- ~~सचित्ताद्दाणे~~ सचित्तादत्तादाणे अचित्तादत्तादाणे य। थूलादत्तादाणस्स ~~स~~ - वेरमणस्स समणोवासएणं इमे पंच अइयारा जाणियव्वा, तं जहा- तेनाहडे तक्करप्पओगे विरुद्धरज्जाइक्कमणे कूडतुलकूडमाणे तप्पडिरूवगववहारे 3।

अदत्तादान २प्र. - स्थूल = स्थूल विषयक, चोरी के आरोप रूप में प्रसिद्ध।
सूक्ष्म = इससे विपरीत।
अदत्तादान २प्र. ① सचित्तादत्तादान = सचित्त वस्तु, जो उसके मालिक ने खेत वि. में अच्छी तरह रखी हो या जैसे-तैसे रखी हो या भूल गया हो किंतु न दी हुई ऐसी वस्तु को चोरी की बुद्धि से लेना।
② अचित्तादत्तादान = ऐसे ही वस्त्र - सोना - रत्न वि. अचित्त वस्तु विषयक।

प्र. अदत्तादान में क्या दोष हैं या न करने में क्या गुण हैं।
उ. गुण-दोष में दृष्टांत - एक गोष्ठी थी × उसमें एक श्रावक भी था × एक जगह प्रसंग में बहुत लोग इकट्ठे हुए थे × जब सब लोग गए तब गोष्ठी ने घर को लूटा × घर में उस समय एक वृद्धा थी × उसके पास मोरपींछ थी × जब सब लूट रहे थे, तब 'मुझे मारना मत' ऐसा बोलते हुए सबके पैर में पड़ी × मोरपींछ से पैर में चिह्न भी किए × दूसरे दिन वृद्धा ने राजा को कहा × राजा - इन्हें कैसे पकड़ूँ? × वृद्धा - उनके पैरों में चिह्न हैं × राजा ने पूरे नगर के सब युवानों को बुलाया × चिह्न से

पकड़ते हुए पूरी टोली पकड़ी x उसमें श्रावक बोला- मैं तो वृद्धा के घर भी नहीं गया, जिससे मुझे चिह्न भी नहीं है x अन्य युवान् भी बोले- इसने चोरी नहीं की x इसे छोड़ दिया, बाकी को दंड किया x।

पहले तो श्रावक को ऐसी गोष्ठी में जाना ही नहीं चाहिए। यदि जाए तो भी उन्हें तत्ववार्ता वि. नहीं देना चाहिए और उनके आयोग यानि लाभ, प्राप्ति स्थानों पर जाना भी नहीं चाहिए। अथवा उन्हें हिंसादि में सहायक द्रव्य - वैसे (सेंध लगाने की) नहीं देना चाहिए। आदि शब्द से भोजनादि भी नहीं देना। (टिप्पणक)

इस व्रत के ५ अतिचार -

1. स्तेनाहृत = चोरों द्वारा चोरे हुए कुंकुम वि. को 'यह महँगी वस्तु सस्ती मिलेगी' ऐसे लोभ से ग्रहण करना।
2. तस्करप्रयोग = चोर को चोरी करने में प्रेरणा करना।
3. विरुद्धराज्यातिक्रम = दो विरुद्ध राजाओं ने जहाँ राज्य का लंघन निषेध किया हो, वहाँ से राज्य का लंघन करना।
4. कूटतुलाकूटमान = कम देना और ज्यादा लेना। तराजू और कुडवादि मान के ~~अतिचार~~ गलत रखना।
5. तत्प्रतिरूपकव्यवहार = उसके जैसे ही प्रतिरूप (नकली) डालना। eg. चावल या घी में पतंजी, चर्बी mix करना।

इनके दोष- चोर द्वारा चोरी की हुई स्वयं की वस्तु को राजा अथवा स्वामी पहचाने तो दंड करे या मारे वि.।

४थ. चौथा अणुव्रत -

सूत्र परदारगमणं समणोवासगा पच्चक्खाति सदारसंतोसं वा पडिवज्जइ, से य

परदारगमणे दुविहे पन्नत्ते, तं जहा- ओरालियपरदारगमणे वेउव्वियपरदारगमणे, सदारसंतोसस्स समणो... तं जहा- इत्तरियपरिग्गहियागमणे अपरिगहियागमणे अणंगकीडा परवीवाहकरणे कामभोगतिव्वाभिलासे 4।

स्वयं के अलावा अन्य की पत्नियों विषयक गमन परदारागमन। अथवा स्वयं की पत्नियों में संतोष मानना, ऐसा स्वदारासंतोष। श्रावक परदारागमन का त्याग करता है अथवा स्वदारा संतोष स्वीकारता है। परदारागमन का त्याग करने वाला श्रावक पर (अन्य) की कहलाती स्त्रियों के गमन से ही रुकता है, जबकि स्वदारासंतोष स्वीकारने वाला श्रावक स्वयं की पत्नियों सिवाय सबका त्याग करता है।

परदारागमन 2 प्र. - औदारिक परदारा गमन = स्त्री वि.।
वैक्रिय " " = देवांगना विषयक।

चौथा अणुव्रत न स्वीकारने वाले को दोष- वह स्वयं की माता का भी सेवन कर लेता है। उदाहरण - गिरिनगर में रहने वाली 3 सखी उज्जयिनी गई x वहाँ चोरों ने पकड़कर पारसकुल में उन्हें बेचा। तीनों के तीन छोटे बच्चे घर में ही रह गए x तीनों मित्र हुए x माता के स्नेह से तीनों पारसकुल में व्यापार के लिए गए x इधर तीनों वेश्या बन गई थी x तीनों उन्हें अपने देश की स्त्री समझकर उन्हें पैसे देते हैं x तीनों अतिशयता से स्वयं की माता के पास ही गए x उनमें एक श्रावक था x श्रावक उस स्त्री के साथ इच्छता नहीं है x बाकी दोनों स्वयं की माता के साथ ही रहे x श्रावक ने उस स्त्री को पूछा - तुम यहाँ कैसे आए? x वृत्तांत सुनकर समझ गया और बोला - हम ही तुम्हारे पुत्र हैं x अन्य 2 मित्रों को भी कहा x तीनों माता ने वैराग्य से दीक्षा ली।

~~सन्मुखांत~~ - पुत्री के साथ भी सेवन करता है। उदाहरण - स्वयं की पत्नी गर्भवती थी तब एक व्यापारी यात्रा पर गया x पत्नी ने संदेश भेजा कि पुत्री का जन्म हुआ है x व्यापारी भी तब तक व्यापार करता है, जब तक पुत्री युवान हुई x पुत्री को अन्य नगर में विवाह किया x पिता को पता नही था x स्वयं के नगर की ओर वापस आते हुए वर्षाकाल में वह पुत्री के नगर में रुका x दोनों का मित्याप हुआ x अकृत्य किया किंतु वह जानता नही था कि यह मेरी पुत्री है x वर्षाकाल के बाद स्वयं के नगर पहुँचा x पत्नी ने पुत्री के जन्म से लेकर विवाह तक बात की x माता-पिता की पुत्री को बुलाने की इच्छा हुई x पिता-पुत्री एक-दूसरे को देखकर लज्जित हुए x पुत्री ने आत्म हत्या की, पिता ने दीक्षा ली।

तीसरा उदाहरण - एक गोष्ठी में थी x उसमें एक दास था x उसकी माता रात में पर पुरुष के पास जाने बार-बार निकलती है x पुत्रवधू पति को कहती है लेकिन वह नहीं मानता x एकदा देवकुल में रहे ~~ब~~ गोष्ठी के युवानों ने जाती हुई उस माता को पकड़कर क्रमशः अकृत्य किया x रात होने से कोई पहचान न सके x माता-पुत्र के ऊपर के वस्त्र बदल गए x सुबह वह घर आया तो पत्नी - ऊपर महिला का वस्त्र क्यों पहना है ? x वस्त्र माता का है, ऐसा पता चलने पर पत्नी ने पति को धिक्कारा - हे पापी ये क्या किया ? x पति भाग गया और दीक्षा ली।

चौथा उदाहरण - एक नगर में एक वेश्या को गर्भ रहा x युगल का जन्म हुआ x मुझे मूल्य नहीं मिलेगा ऐसा सोचकर पुत्र को पूर्व द्वार पर और पुत्री को पश्चिम द्वार पर छोड़ा x नगर के 2 व्यापारी मित्र थे x दोनों ने पुत्र-पुत्री ग्रहण किए x बड़े होने पर दोनों का विवाह किया x विवाह के वह पुत्र उसकी माता वेश्या के साथ अकृत्य करता है x वेश्या को पुनः पुत्र जन्म हुआ x उधर पुत्री ने धर्म सुनकर दीक्षा ली x उसे अवधि ज्ञान हुआ x पुत्र-माता के संबंध को देखकर प्रतिबोध करने वह आकर उनके नवजात पुत्र को कहने लगी - 1. तू मेरा पुत्र है 2. तू मेरा भतीजा है 3. तू

मेरा देवर है 5. तू मेरा भाई है 6. तेरे पिता मेरे पिता हैं 6. तेरे पिता मेरे पति हैं 7. तेरे पिता मेरे ससुर हैं 8. तेरे पिता मेरे भाई हैं ... वि. अनेक अनेक संबंध बताकर पति को बोध दिया ✓ पति ने दीक्षा ली।

ये मैथुन के आलोक संबंधी दोष कहे। परलोक में नपुंसकत्व, कुरूप, प्रिय का वियोग वि. ४ दोष।

आलोक गुण का उदाहरण – कच्छ देश में पति-पत्नी रूप कुलपुत्र (वंश की रक्षा करने वाले) श्रावक बने ✓ आनंदपुर नगर में एक गरीब ब्राह्मण था ✓ उसने भूतेश्वर नामक वाणव्यंतर को उपवास से प्रसन्न किया और वरदान माँगा - मैं चतुर्वेद वाले ब्राह्मण को भोजन करा सकूँ इतना धन दो जिससे मुझे पुण्य हो ✓ देव - कच्छ देश में पति-पत्नी रूप कुलपुत्रों को भोजन करा जिससे तुझे महान् फल होगा ✓ ब्राह्मण कच्छ देश में जाकर उन्हें भोजन कराता है और दक्षिणा देता है ✓ फिर उन्हें पूछता है - आपका ऐसा कौन सा तप-चारित्र है, जिससे आप देवों को भी पूज्य हैं? ✓ कुलपुत्र - हम दोनों ने बचपन में एकांतर मैथुन का नियम लिया था, हम दोनों का विवाह हुआ, जिससे वह विपरीत हो गया, जिस दिन एक को ब्रह्मचर्य पौषध होता है उस दिन दूसरे को पारणा होता है, अतः हम विवाह से लेकर बूढ़े होने तक कुमार ही हैं ✓ ब्राह्मण ने बोध प्राप्त किया।

परलोक में प्रधान पुरुषत्व, देवलोक में रूपादि गुणों से प्रधान अप्सरा, मनुष्य में प्रधान स्त्री, ५ इंद्रियों के विपुल भोग, प्रिय का संयोग और आसन्न मोक्ष।

स्वदारसंतोष के ५ अतिचार - 1. इत्वरपरिगृहीतागमन = दूसरे ने पैसे देकर कुछ काल के लिए किसी स्त्री को वश किया हो, उसका सेवन।

2. अपरिगृहीतागमन = जिसने दूसरे से पैसे न लिए हो ऐसी वेश्या या अनाथ स्त्री का सेवन। या कोई कुलांगना

3. अनंगक्रीड़ा = अनंग यानि स्तन, बगल, जांघ, मुख वि. | उनके विषयक क्रीड़ा करना अथवा अनंग यानि मोह के उदय से उत्पन्न अत्यंत तीव्र मैथुन का अध्यवसाय इसे काम भी कहते हैं | ऐसे अनंग यानि तीव्र परिणाम से क्रीड़ा करना अथवा अनंग विषयक क्रीड़ा करना | कृतकृत्य का भी स्वलिंग से आहार्य ऐसे काष्ठ-फलक-पुस्तक-मिट्टी-चर्म वि. से घड़े हुए ~~पुरुष~~ पुरुषनन द्वारा स्त्री के गुप्त प्रदेश का सेवन |

4. परविवाहकरण = स्वयं की संतान सिवाय अन्य के संतानों का स्नेह संबंध से अथवा कन्या फल की लिप्सा से विवाह कराना | उत्सर्ग से तो श्रावक स्वयं की संतानों का भी विवाह नहीं करवाता अथवा नियम लेते हुए जितनी संतानों के विवाह की छूट रखी हो, उतने कल्पते हैं | बाकी तो 'आपकी लड़की बड़ी हो गई है, उसका विवाह करो या सांढ को गायों के बीच रखो' ऐसा बोलना भी नहीं कल्पता है |

5. कामभोग में तीव्राभिलाष = काम यानि जिनकी इच्छा की जाए - शब्द, रूप, गंध | जिन्हें भोगा जाए वे भोग - रस, स्पर्श | इन काम-भोगों में तीव्र - अत्यंत अभिलाष करना | ~~शांति~~ क्रीड़ा समाप्त होने पर भी अतृप्तता से लिंग को स्त्री के मुख-योनि-बगल वि. में डालकर बहुत देर तक मृतक की तरह पड़ा रहता है | स्त्री के शरीर के अवयवों में जो उत्पलपत्रकादि रचना है, उन्हें दाँत और नाखून से उनके द्वारा मर्दन को उत्तेजित करता है | वाजिन यानि औषधप्रयोग वि. से शुक्रधातु का प्रचुर्य करना | ऐसा वाजीकरण वह करता है | अन्य मत - औषध वि. के प्रयोग से शुक्रधातु को जल्दी गिराना वाजीकरण है | (लिप्पणक) अथवा स्त्री के गुप्त प्रदेश का मर्दन करता है |

प्रथम दो अतिचार स्वदारा संतोष व्रत वाले को होते हैं, परदारविवर्जक को नहीं | शेष अतिचार दोनों को होते हैं |

दोष- इत्वरपरिगृहीतागमन में दूसरे के साथ वैर हो अथवा वह मारे या ताड़न करे वि.। ऐसे ही शेष में जानना।

अब. पाँचवां अणुव्रत-

सूत्र अपरिमियपरिग्गहं समणो. इच्छापरिमाणं उवसंपज्जइ, से परिग्गहे दुविहे पन्नत्ते, तं जहा- सचित्तपरिग्गहे अचित्तपरिग्गहे य, इच्छापरिमाणस्स समणो. इमे पंच. - खित्तवत्थुपमाणाइक्कमे हिरन्नसुवन्नपमाणाइक्कमे धणधन्नपमाणाइक्कमे दुपय-चउप्पयपमाणाइक्कमे कुवियपमाणाइक्कमणे ५।

श्रावक अपरिमित परिग्रह का त्याग करता है और सचित्तादि द्रव्य विषयक इच्छा के परिमाण को स्वीकारता है।

परिग्रह २प्र.- सचित्त = द्विपद, चतुष्पद वि.।

अचित्त = रत्न, वस्त्र, कुप्यादि।

इस पु पाँचवें अणुव्रत में अनिवृत्त को दोष और निवृत्त को गुण होते हैं। इसमें उदाहरण- कोशा के कारण लोभी नंद मरा और श्रावक की पूजा हुई (भाग पृ.)।

दूसरा उदाहरण- एक वणिक् यात्रा पर गया x गाँव में दुष्काल पड़ा x उसकी पत्नी भूख के कारण मरने लगी तो रत्न बेचने गई x पहले श्रावक के पास गई x उनकी कीमत श्रावक के परिग्रह परिमाण से अधिक होने से उसने कहा - मैं इसका मूल्य जान सकूँ, ऐसा नहीं हूँ x अन्य वणिक् के पास गई x उसे कहा- इसका जो योग्य मूल्य हो, वह दे x वह अत्यंत अल्प मूल्य देता x सुकाल होने पर पति आया x पूछने पर पत्नी ने कहा- एक सेतिका प्रमाण गेहूँ एक रत्न, इस भाव से सभी रत्न उस वणिक् को बेच दिए x पति जाकर वणिक् को बोला- तू मेरे रत्न वापस

दे या पूरा मूल्य दे x वह नहीं माना x पत्नि ने राजा को कहा x राजा ने उस वणिक् का नाश किया x श्रावक के न खरीदने से राजा ने उसकी पूजा की।

इस व्रत के अतिचार - 1. क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रम ⇒ क्षेत्र यानि धान्य की उत्पत्ति की भूमि अर्थात् खेत। वह 2 प्र. का है - सेतुक्षेत्र = अरघट्ट वि. से सींचने वाला, केतुक्षेत्र = आकाश से गिरे पानी से सींचने वाला। वास्तु = घर, 3 प्र. - खात - भोंयरा रूप घर, उत्सृत = महल वि., खातोत्सृत = भोंयरे सहित महल। इन खेत-घर वि. का नियम लेते समय जो प्रमाण रखा हो, उससे अधिक प्रमाण होना।

2. हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रम ⇒ हिरण्य यानि घड़ी हुई या न घड़ी हुई चांदी अथवा द्रम्म वि. currency। सुवर्ण यानि घड़ा हुआ या न घड़ा हुआ सोना। इसके उपलक्षण से चंद्रनील, मरकत वि. ~~पन्ना~~ पत्थर भी लेना। इनके प्रमाण का लंघन।

3. धनधान्यप्रमाणातिक्रम ⇒ धन = गुड़, शक्कर वि., ~~पन्ना~~ (अन्य मत - गाय, भैंस, घोड़े, ऊँट, भेड़ वि.) धान्य = चावल, मूँग, उड़द, जौ, गेहूँ, तिल वि.। इनके प्रमाण का लंघन।

4. द्विपदचतुष्पदप्रमाणातिक्रम ⇒ द्विपद यानि दास-दासी-मोर-हंस वि। चतुष्पद यानि हाथी, घोड़े, भैंस वि.।

5. कुप्यप्रमाणातिक्रम ⇒ कुप्य यानि आसन, शयन, भाजन, परात वि. लोहे कि की सामग्री का समूह। उपलक्षण से वस्त्र, कंबल वि.।

इन अतिचारों में जीवघातादि दोष होते हैं।

अब. इन अणुव्रतों के पालन के लिए भावना स्वरूप गुणव्रत होते हैं। ये गुणव्रत 3 होते हैं। पहले गुणव्रत दिशाव्रत का स्वरूप -

सूत्र दिसिवए तिविहे पन्नत्ते - उड्ढदिसिवए अहोदिसिवए तिरियदिसिवए, दिसिवयस्स समणो. इमे पंच. तं जहा- उड्ढदिसिपमाणाइक्कमे अहोदिसिपमाणाइक्कमे तिरियदिसिपमाणाइक्कमे खित्तवुड्ढी सइअंतरद्धा 6।

दिशाएँ शास्त्र अनेक प्रकार की कही गई हैं। उनमें सूर्य से पहचाने जाने वाली पूर्व, शेष पूर्वदक्षिणादि क्रमशः जानना। उन दिशाओं संबंधी व्रत अथवा दिशा विषयक व्रत है 'पूर्वादि दिशाओं के इतने भाग में मैं जाऊँगा, इससे आगे नहीं' यह सामान्य से उपः का है - 1. ऊर्ध्व दिशा - संबंधी अथवा विषयक व्रत - इतनी दिशा ऊपर पर्वतादि चढ़ने से मैं अवगाहन करूँगा, उससे आगे नहीं।

2. अधोदिग् संबंधी व्रत - इंडकूपादि में उतरने द्वारा इतनी अधो दिशा का मैं अवगाहन करूँगा, उससे आगे नहीं।

3. तिर्यक् दिग् संबंधी व्रत - इतनी दिशा पूर्व में, इतनी दक्षिण में इ.।

यह व्रत लेने पर अवग्रह क्षेत्र के बाहर स्थावर-जंगम प्राणी विषयक दंड का त्याग होता है, यह इसका गुण (लाभ) है।

इस व्रत के 5 अतिचार- 1. ऊर्ध्वदिक् प्रमाणातिक्रम - जितना प्रमाण रखा हो, उसका लंघन

2.3. अधो-तिर्यक्दिक् प्रमाणातिक्रम - Same as above।

4. क्षेत्रवृद्धि - एक दिशा में 100यो. का अभिग्रह लिया, दूसरी में 10यो.। इस दिशा में कार्य उत्पन्न होनेपर 10यो. इस दिशा में कम कर, दूसरी दिशा में 10यो. बढ़ा देना।

5. स्मृत्यन्तर्धान = स्मृति भ्रष्ट होना अर्थात् किस मर्यादा से या कौन सा व्रत व्रत लिया, वह भूल जाना। नियम अनुष्ठान स्मृति रूप मूल वाला है अतः स्मृति भ्रष्ट होने पर नियम का भ्रंश अवश्य होता है।

यहाँ ऐसी सामाचारी है - ऊर्ध्व दिशा में जो प्रमाण लिया था, उसके ऊपर पर्वत के शिखर पर या वृक्ष पर बंदर, अथवा पक्षी इसका श्रावक के वस्त्र, आभरण ले गया हो तो श्रावक को वह लेने जाना कल्पता नहीं है। जब वह नीचे गिरे या कोई लाए तो लेना कल्पता है। ~~ऐसा~~ अष्टापद- हेमकूट- सम्मेतशिखर- सुप्रतिष्ठ - उज्जयंत- चित्रकूट- अंजनक - मेरु वि. पर्वतों पर ऐसा संभव है। ऐसे ही अधोदिशा में कूए वि. समझना। तिर्च्छीदिशा में जो प्रमाण ग्रहण किया हो, उसे मन-वचन-काया से भी उल्लंघना नहीं। क्षेत्रवृद्धि नहीं करना चाहिए। eg. वह पूर्व दिशा में किराना लेकर गया। जहाँ तक परिमाण हो, वहाँ तक जाए। इसके आगे किराना बेचने में बहुत मूल्य मिले, ऐसा हो तो पश्चिम दिशा के योजनों को पूर्व दिशा में डाले। ऐसे क्षेत्रवृद्धि करना कल्पता नहीं है। कभी खबर न पड़ी और आगे निकल जाए तो खबर पड़ने पर तुरंत वापस आए। यदि दिशा का प्रमाण भूल जाए तो उस दिशा में जाए ही नहीं, किसी अन्य को भी न भेजे। आज्ञा बिना कोई जाए तो उसने विस्मृत क्षेत्र मर्यादा वाली दिशा में जो प्राप्त किया हो, वह ग्रहण न करे। (गुंथाग्र 2000)

अब. द्वितीय गुणव्रत-

सूत्र उवभोगपरिभोगवए दुविहे पन्नत्ते तंजहा- भोअणओ कम्मओ अ। भोअणओ... पंच-सचित्ताहारे सचित्तपडिबद्धाहारे अप्पउलिओसहिभक्खणया दुप्पउलिओसहिभक्खणया तुच्छोसहिभक्खणया ५।

उपभोग = एकबार भोगने वाली वस्तु eg. अशन पानादि। अथवा
अन्दर भोगी जानेवाली वस्तु eg. आहारादि।
परिभोग = बार-बार भोगने वाली वस्तु eg. वस्त्रादि। अथवा
बाह्य भोग वाली eg. वस्त्रादि।
इन उपभोग-परिभोग विषयक व्रत।

यह व्रत २७. - 1. भोजन से - उत्सर्ग से निरवद्य आहार का भोजी होना चाहिए।
2. कर्म से - " " " कर्म अनुष्ठान से युक्त " ।

यह सामाचारी है - श्रावक को उत्सर्ग से प्रासुक आहार (स्वयं के लिए न बना आहार) ही करना चाहिए। वह न हो तो अप्रासुक भी अचित्त बापरे। वह भी न हो तो अनंतकाय-बड़ीजादि का त्याग करे। और भोजन में अन्य यह त्याग करे- अशन में अनंतकाय और मांस। पान में मांस का रस, भज्जा वि.। खादिम में उदुंबर, काकोदुंबर, वट, पीपल, प्लक्ष वि.। स्वादिम में शहद वि.। अचित्त आहार करना चाहिए यदि अचित्त न हो तो उत्सर्ग से अवत प्रत्याख्यान करना चाहिए। यदि समर्थ न हो तो अपवाद से अनंतकाय-बड़ीबीज सिवाय ~~अन~~ सचित्त बापरे।
कर्म से भी व्यापार बिना जीना शक्य न हो तो अत्यंत सावद्य व्यापारकर्म का त्याग करे।

इस व्रत के अतिचार- 1. सचित्ताहार = चित्त, चेतना, संज्ञा, उपयोग, उपधान-ये एकार्थक शब्द हैं ऐसे सचित्त मूल, कंदली (प्रत्येक वनस्पति विशेष), कंद, अदरक वि. साधारण-प्रत्येक वनस्पति के शरीर बापरना।
2. सचित्तप्रतिबद्धाहार = वृक्ष पर लगे गुंद वि. अथवा पके हुए फल बापरना।
3. अपक्वौषधभक्षण = औषध यानि धान्य। कच्चे धान्य खाना।
4. अथवा सचित्तसंमिश्राहार = फूल, पत्ते से मिश्र आहार।
5. दुष्पक्वौषधिभक्षण = बराबर न पके हुए आहार का भक्षण।
तुच्छौषधिभक्षण = तुच्छ, असार ऐसी मूंगफली वि. खाना। इसमें विराधना ज्यादा और तृप्ति अल्प होती है। और यदि बहुत खाई तो इसलोक में ही अपाय संभव है।

तुच्छौषधिभक्षण में उदाहरण - एक खेत की रक्षा करने वाला भूँगफली खाता है x एकदा राजा वहाँ से पसार हुआ x उसे देखा x दोपहर को वापस आते हुए भी उसे खाते हुए देखा x कितनी भूँगफली खाई? यह देखने राजा ने उसका पेट फाड़ा x अंदर झाग थे, और कुछ नहीं था।

अत. कर्म से व्रत के अतिचार -

सूत्र कम्मओ णं समणो. इमाइं पन्नरस कम्मादाणाइं जा., तं जहा - इंगालकम्मे वणकम्मे साडीकम्मे भाडीकम्मे फोडीकम्मे, दंतवाणिज्जे लक्खवाणिज्जे रसवाणिज्जे विसवाणिज्जे केसवाणिज्जे, जंतपीलणकम्मे निल्लंछणकम्मे दवग्गिदावणया सरदहतलायपरिसोसणया असईपोसणया यत्ति ७।

कर्म से जो व्रत कहा, उसके आश्रय से ये १५ कर्मादान छोड़ना चाहिए। कर्म यानि बंधा, आदान यानि उत्कट ज्ञानावरणीयादि कर्म ग्रहण का हेतु। अत: श्रावक को अत्यंत सावद्य, जीवन का उपाय न होने पर भी इन्हें नहीं आचरना चाहिए।

1. अंगारकर्म = लकड़ी से अंगार यानि कोयले बनाना, बेचना। इसमें ६ काय की वध होने से नहीं कल्पता।
2. वनकर्म = जंगल को खरीदना, फिर वृक्ष, पत्ते वि. काटकर बेचने द्वारा आजीविका चलाना।
3. शकट कर्म = बैलगाड़ी वि. बनाकर बेचना। उसमें बैल-घोड़े वि. के बंधन-वधादि दोष।
4. भाटक कर्म = स्वयं की बैलगाड़ी अथवा बैल वि. दूसरे को किराए पर दे।
5. स्फोटना कर्म = कुआ, तालाब वि. खोदना या हल से खेत वि. भूमि को खोदना।
6. दंतवाणिज्य = पहले से ही पुलिंद (जंगल के आदिवासी) को मूल्य दे और कहे कि मुझे हाथीदाँत देना। उपलक्षण से चमरी गाय के बाल, किसी के नाखून, चमड़ी वि.)

बाद में वे पुलिंद हाथी वि. को मारे। ऐसे मच्छीमार को शंख का मूल्य दे।
ऐसा श्रावकों को नहीं कल्पता है। पहले से कोई लाया हो तो वह खरीदना करता है
7. लाक्षावाणिज्य= लाख के रस में भी कृमि वि. होते हैं। उनकी हिंसा से नहीं कल्पत
8. रसवाणिज्य= दारु, शहद, चर्बी वि. बेचना। इसमें दारु वि. पीने में मारना, अक्को
बधादि बहुत दोष हैं। इसलिए नहीं कल्पता।
9. विषवाणिज्य = विष बेचना। इसमें बहुत जीवों की विराधना है।
10. केशवाणिज्य = जहाँ बहुत मूल्य प्राप्त हो, वहाँ दास-दासी वि. बेचना। इसमें परवश
वि. दोष हैं।
11. यंत्रपीलनकर्म= तिल को पीलने का यंत्र, गन्ने को पीलने का चक्र वि. का
व्यापार श्रावक को नहीं कल्पता।
12. निर्लांछनकर्म= सांढ वि. के अंग छेद नहीं कल्पता।
13. दावाग्निदापनताकर्म= खेत की रक्षा के लिए अधवृत्ति पुराने घास को नष्ट करने
खेत को जलाते हैं, जिससे बाद में नया घास उगे। इसमें लाखों जीवों का
वध होता है।
14. सरोह्रदतटाकपरिशोषणताकर्म= सरोवर, ह्रद, तालाब वि. को सूखाकर वहीं बीज
बोए।
15. असतीपोषणता कर्म= असती का पोषण करना। eg. गोल्ल देश में धानिपोष
वेश्याओं का पोषण करते हैं, उनका किराया ग्रहण करते हैं।
यह तो मात्र कुछ बताए हैं। उपलक्षण से बहु सावद्य वाले ऐसे कर्म सभी
लेना।

अब. तीसरा गुणव्रत—

सूत्र अणत्थदंडे चउव्विहे पन्नत्ते, तं जहा- अवज्झाणायरिए पमायायरिए हिंसप्पयाणे

पावकम्मोवएसे, अणत्थदंडवेरमणस्स समणो. पंच. तं जहा-कंदप्पे कुक्कुइए मोहरिए संजुत्ताहिगरणे उवभोगपरिभोगाइरेगे 8।

अर्थ यानि प्रयोजन, गृहस्थ के क्षेत्र-वास्तु-धन-शरीर-परिजनादि। उनके लिए आरंभ यानि जीव हिंसा करना, वह अर्थ दंड।
इससे विपरीत, प्रयोजन रहित, उपयोग रहित, कारण रहित जीव हिंसा करना अनर्थदंड। eg. दुष्ट-पुरुषव्यक्ति संकल्प पूर्वक कुठार से वृक्ष-स्कंध-शाखा वि. प्रहार करे, गिरगिट-कीड़ी वि. को मारे। इसके मारने में कोई ऐसा अतिशय उपकार करने वाला प्रयोजन नहीं है, जिसके बिना गृहस्थपन पालना शक्य न हो।

यह अनर्थदंड 4 प्र. - 1. अपध्यानाचरित = अपध्यान से हुआ हो। इसमें देवदत्त श्रावक और कोंकणक साधु का दृष्टांत है। (देवदत्त श्रावक का दृष्टांत ख्यात नहीं है। कोंकणक साधु का दृष्टांत भा.5 Pg.)।
2. प्रमादाचरित = प्रमाद 5 प्र. मद्य-विषय-कषाय-विकथा-निद्रा।
3. हिंसाप्रदान = ~~शस्त्र~~ शस्त्र-~~अग्नि~~ अग्नि वि. हिंसा के हेतु होने से हिंसा कहे जाते हैं, कारण (शस्त्रादि) में कार्य (हिंसा) के उपचार से। ऐसे शस्त्रादि क्रोध से अभिभूत या अनाभिभूत किसी अन्य को देना।
4. पापकर्मोपदेश = पातयति नरकौ इति पापं। ऐसा पाप प्रधान कर्म (क्रिया) का उपदेश देना। eg. खेती करो वि.।

इस व्रत के अतिचार - 1. कंदर्प = काम विकार के हेतु रूप ऐसा विशिष्ट वाक्प्रयोग। राग के उद्रेक से हास्य सहित वचन प्रयोग। यहाँ सामान्यचारी है - श्रावक को जोर से हँसना नहीं कल्पता। यदि हँसना पड़े तो थोड़ा ही हँसना, स्मित करना।

2. कौकुच्य = मुख - नयन - होंठ - हाथ - चरण - eyebrow के विकार पूर्वक अनेक प्रकार की कुत्सित क्रिया, भांड वि. की तरह, जिससे लोगों को हँसना आए।
सामाचारी = श्रावक को बोलने, चलने, बैठने वि. क्रिया ऐसे नहीं करना चाहिए, जिससे दूसरों को हँसी आए।

3. मौखर्य = धृष्टता पूर्वक असत्य, असंबद्ध बोलना।
उदाहरण - राजा को अन्य गाँव में जल्दी जा सके ऐसे पुरुष की जरूर पड़ी × मंत्री को पूछा × मंत्री ने एक सैनिक का नाम कहा × सैनिक की इच्छा नहीं थी फिर भी राजा ने जबरजस्ती भेजा × सैनिक को मंत्री पर गुस्सा आया × मौका मिलने पर मंत्री को मार डाला × ऐसे मंत्री ने मौखर्य द्वारा स्वयं ही शत्रुता ~~को~~ खड़ी ~~किया~~ की।

(टिप्पणक)

4. संयुक्ताधिकरण = लकड़ी छीलने का शस्त्र (वासी), इमानदस्ता (उदूखल), औषध वि. कूटने का पत्थर (शिलापुत्र), गेहूँ पीसने का यंत्र वि. शस्त्र अधिकरण हैं। इन्हें वा संयुक्त यानि तैयार रखना अतिचार है।
सामाचारी - श्रावक को बैल-बग्गी वि. तैयार नहीं रखना चाहिए अर्थात् बैल गाड़ी में जोड़कर नहीं रखने चाहिए, कुल्हाड़ी में हत्था जोड़कर नहीं रखना चाहिए वि।

5. उपभोगपरिभोगातिरेक = उपभोग-परिभोग की वस्तु का अतिरेक करना।
सामाचारी - उपभोग का अतिरेक → जब श्रावक तालाब पर नहाने जाए तब तेल-आँवले ज्यादा साथ में ले जाए तो वहाँ लालच से बहुत त्याग आएँगे। नहाने की इच्छा न होने पर भी तेल-आँवले के लालच से नहाएँगे। अतः पानी में जीवों, अप्काय वि. जीवों की विराधना। ऐसे ही पुष्प, तंबोल वि. में जानना।

प्र. श्रावक के स्नान रूप उपभोग में क्या विधि है?
उ. श्रावक को घर पर ही नहाना चाहिए। यदि ऐसा संभव न हो तो घर पर ही तेल-आँवले से सिर घिसकर, सब वहीं खंखेर कर फिर तालाब के किनारे बैठकर अंजलि से स्नान करना चाहिए। ऐसे ही जिन पुष्प में कुंथवे वि. जीव हो, उन पुष्पों

को छोड़ देना चाहिए।

अब. गुणव्रत भी कहे गए। अब शिक्षाव्रत कहते हैं। ये ४ होते हैं। प्रथम शिक्षाव्रत –

सूत्र सामाइअं नाम सावज्जजोगपरिवज्जणं निरवज्जजोगपडिसेवणं च।
सिक्खा दुविहा गाहा उववायठिई गई कसाया य। वंदंता वंदंता पडिवज्जाइक्कमे पंच ॥1॥
सामाइयंमि उ कए समणो इव सावओ हवइ जम्हा। एएण कारणेणं बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥2॥
सव्वंति भाणिऊणं विरई खलु जस्स सव्विया नत्थि। सो सव्वविरइवाइ चुक्कइ देसं च सव्वं च ॥3॥
सामाइयस्स समणो. इमे पंच. तं जहा- मणदुप्पणिहाणे वइदुप्पणिहाणे कायदुप्पणिहाणे
सामाइयस्स सइअकरणया सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया। 9 ॥

सम यानि राग-द्वेष से रहित जो स्वयं की तरह सभी जीवों को देखे। ऐसे समत्व की प्राप्ति समाय। समाय है प्रयोजन जिसका अनुष्ठान का ऐसा सामायिक। सामायिक यानि काल की अवधि से सावद्य योगों का त्याग। सामायिक मात्र सावद्य योग के त्याग रूप अपापव्यापार के सेवन से शून्य न हो इसलिए कहा- निरवद्ययोग का सेवन।

सामाचारी - श्रावक को सामायिक कैसे करना चाहिए? ई. श्रावक 2 प्र. - ऋद्धिमान् और ऋद्धि रहित। जो ऋद्धि रहित है, वह चैत्यगृह में, साधु के पास, घर में, पौषधशाला में या जहाँ वह निर्व्यापार होकर शांति से आराम करता हो या रहता हो, वहाँ सामायिक करे। किंतु जब आवश्यक (प्रतिक्रमण) करता हो तब ५ जगह नियमा सामायिक करे - चैत्यगृह, साधु के पास, पौषधशाला और घर।

इसमें जब साधु के पास करे तब क्या विधि है? ई. यदि किसी शत्रु का भय हो या अथवा किसी से विवाद हो अथवा किसी का ऋण हो तो घर से सामायिक

लेकर न जाए क्योंकि रास्ते में विवाद हो या लड़ाई हो या ऋण लेने वाला मिले तो सामायिक का भंग भी हो सकता है। अतः कोई शत्रु भय न हो या विवाद न हो या ऋण न हो या रास्ते में जाते हुए कोई व्यापार करना न हो तो वह घर से सामायिक लेकर साधु के पास जाए। जाते हुए ३ समिति-३ गुप्ति का पालन करे - साधु की तरह ईर्या में बराबर उपयुक्त, सावद्य भाषा का त्याग करता, काष्ठ या मिट्टी के ढेफे वि. की जरूर हो तो उसके स्वामी की अनुज्ञा लेकर प्रतिलेखन-प्रमार्जना कर ग्रहण करे, प्रतिलेखन-प्रमार्जना कर ग्रहण करे-रखे, कफ वि. को परठे नहीं या भूमि की प्रमार्जना कर परठे, जहाँ खड़ा वि. रहे वहाँ भी मनादि गुप्ति का निरोध करे। इस विधि से जाकर मन-वचन-काया से साधुओं को नमस्कार कर सामायिक करे - करेमि भंते! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि दुविहं तिविहेणं जाव साधू पज्जुवासामि... (जब तक साधुओं की पर्युपासना करता हूँ...) फिर इरियावही करे। फिर आगमन वि. की आलोचना कर आचार्यादि को रत्नाधिक के क्रम से वंदन करे। पुनः गुरुवंदन कर भूमि का पडिलेहन कर बैठे। स्वयं की शंकाएँ पूछे या पढ़े। ऐसे ही चैत्य घर में भी जानना। जब घर में या पौषधशाला में सामायिक को तब बाहर जाना नहीं होता।

जो ऋद्धिमान् श्रावक हैं, वह घर से सामायिक लिए बिना पूरी ऋद्धि से साधु के पास जाए। ऐसे जाने से लोग में धर्म में उत्साह बढ़ता है और 'ऐसे लोग भी साधु को पूजते हैं' ऐसा सोचकर लोग भी साधुओं का आदर करे। ऐसा श्रावक यदि घर से ही सामायिक लेकर जाए तो उसके हाथी-घोड़े-आदमियों द्वारा हिंसा होगी इसलिए सामायिक लेकर न जाए। यदि सामायिक लेकर जाए तो पैदल ही जाना पड़े इसलिए भी सामायिक लेकर न जाए। ऋद्धि के साथ आकर साधु के पास से सामायिक करे।

यदि आने वाला श्रावक श्राद्ध हो तो साधु उठे नहीं। किंतु यदि वह यथाभद्रक हो (धर्म प्राप्त न हो या अभिनव श्राद्ध होवे, साधु की सामाचारी जानता न हो) तो उसे भी ऐसा लगे कि मेरी भी पूजा-सत्कार हुआ इसलिए साधु यह विधि करे- वह आए उसके पहले ही उसका आसन बिछाए, आने के पहले ही आचार्य उठकर घूमने लगे क्योंकि उसके आने पर आ. उठे तो गृहस्थ के आदर का दोष लगता है और यदि खड़े न हो तो उसे बुरा लगे। फिर वह ऋद्धिमान् इस विधि से सामायिक करे- करेमि भंते!... जाव नियमं पज्जुवासामि...। फिर इरियावही कर वंदन कर प्रश्न पूछे या पढ़े। वह ऋद्धिमान् सामायिक करते समय स्वयं के मुकुर, कुंडल, अंगुठी दूर रखे और पुष्प-पान-उत्तरीय वस्त्र वि. का त्याग करे। यह सामायिक की विधि कही।

प्र. सामायिक सावद्य योग के त्याग वि. रूप होने से सामायिक करने वाला श्रावक वस्तुतः साधु ही है। अतः वह इत्वरकालिक सर्व सावद्य योगों का पच्चक्खाण त्रिविध-त्रिविध से क्यों नहीं करता?

उ. सामान्य से सर्व सावद्य योगों का पच्चक्खाण गृहस्थों को असंभव है क्योंकि
1. आरंभों में उनकी अनुमति अव्यवच्छिन्न होती है।
2. सुवर्ण वि. में ममत्व का भाव निवृत्त नहीं होता। यदि ममत्व भाव की निवृत्ति माने तो सामायिक के बाद भी वह उसे सोने वि. को ग्रहण नहीं ~~करेगा~~ करने की आपत्ति होगी।
3. साधु और श्रावक में विस्तार से भेद कहा गया होने से दोनों में बहुत बड़ा अंतर है।

अब. साधु और श्रावक में विस्तार से भेद-

गा. 1 सिक्खा दुविधा गाहा, उववातठिती गती कसाया य। बंधंता वेदंता पडिवज्जाइक्कमे पं

(Pg. 133 में सूत्र में पहली गाथा)

1. दो प्र. की शिक्षा 2. गाथा 3. उपपात 4. स्थिति 5. गति 6. कषाय 7. बंध 8. उदय (वेदं 9. प्रतिपत्ति 10. पंच अतिक्रम - श्रावक और साधु में इन विषयों भेद हैं।

1. शिक्षा - शिक्षा 2 प्र. ग्रहण और आसेवन। शिक्षा यानि अभ्यास। आसेवन शिक्षा में साधु संपूर्ण चक्रवाल साम्राचारी को हमेशा पालते हैं जबकि श्रावक तो सामायिक के समय भी पूरी नहीं पाल सकते क्योंकि उन्हें उसका संपूर्ण ज्ञान नहीं होता और पालन असंभव भी है।

ग्रहण शिक्षा में साधु सूत्र और अर्थ से जघन्य 8 प्रवचन माता और उत्कृष्ट बिंदुसार तक ग्रहण करते हैं। श्रावक सूत्र और अर्थ से जघन्य 8 प्रवचन माता और उत्कृष्ट षड्जीवनिकाय अध्ययन (दशवैकालिक सूत्र के 4 अध्ययन) तक ग्रहण करते हैं। अर्थ से पिंडैषणा अध्ययन भी पढ़ते किंतु सूत्र से नहीं और अर्थ से भी पूरा अध्ययन नहीं।

2. गाथा - गाथा यानि सूत्र प्रामाण्य से भी श्रावक-साधु में भेद है। सूत्र में कहा गया है - सामाइयंमि उ कए समणो इव सावओ हवइ जम्हा।

एएण कारणेणं बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥2॥ (Pg. 133 पर सूत्र में)

सामायिक करने पर श्रावक साधु जैसा होता है, इस कारण से उसे बहुत सामायिक करना चाहिए। यहाँ श्रावक साधु जैसा कहा गया है किंतु 'साधु ही है' ऐसा नहीं कहा। जैसे समुद्र जैसा तालाब है किंतु 'समुद्र ही है' ऐसा नहीं।

3. उपपात - साधु और श्रावक का जघन्य से उपपात सौधर्म कल्प में कहा है जबकि उत्कृष्ट से साधु का सर्वार्थसिद्ध और श्रावक का अच्युत कल्प है।

4. स्थिति - साधु की उत्कृष्ट स्थिति - 33 सा. जघन्य - पल्योपम पृथक्त्व।
श्रावक की " " - 22 सा. " - पल्योपम।

5. गति - व्यवहार से साधु 5 गति कु.कुत्र - उत्कृष्ट मुनि नरक में गए, ऐसी श्रुति है।
श्रावक 4 गति - मोक्ष में नहीं जाते।
अन्यमत - साधु - देव और मोक्ष।
श्रावक - 4 गति।

6. कषाय - साधु संज्वलन कषाय के उदय में 4, 3, 2, 1 या अकषायी भी होते हैं।
श्रावक - अविरत हो तो अनंतानुबंधी सिवाय 12 कषाय के उदय वाले।
देशविरत हो तो अनंतानुबंधी-अप्रत्याख्यान सिवाय 8 कषाय वाले।

7. बंध - साधु मूल प्रकृति की अपेक्षा 8, 7, 6 या 1 प. के बंध वाले हैं।
8 प्रकृति → 6/7 गुणस्थान में। 7 प्रकृति - 6/7 गुणस्थान में (आयु सिवाय)
6 प्रकृति → 8/9 10 वें गुणस्थान में (मोह-आयु 8/9 सिवाय)।
1 प्रकृति → 11/12/13 वें गुणस्थान में।
श्रावक 8 या 7 प. की प्रकृति का बंधक।

8. वेदना - साधु 8, 7 या 4 मूल प्रकृति का वेदक।
श्रावक नियम 8 " " ।

9. प्रतिपत्ति – साधु 5 महाव्रत स्वीकारता है।
श्रावक 1, 2, 3, 4 या 5 अणुव्रत ।।
साधु एक बार सामायिक लेकर हमेशा पालता है। श्रावक बार-बार सामायिक स्वीकारता है।

10. अतिक्रम – साधु के एकव्रत का अतिक्रम होने पर पाँचोंव्रत का अतिक्रम होता है श्रावक के एक ही व्रत का अतिक्रम होता है।

अथवा Pg. No. 135 पर किए गए प्रश्न के जवाब में यह गाथा भी पाठान्तर रूप में मिलती है –
सव्वंति भाणिऊणं ... (Pg. 133 पर सूत्र में गा. 3)।
'सर्व सावद्य योगों का त्याग करता हूँ' ऐसा बोलने वाले श्रावक को सर्व विरति तो नहीं है क्योंकि अनुमति तो उसे चालू ही है। अतः ऐसा बोलने वाला देशविरति और सर्वविरति दोनों से भ्रष्ट होता है क्योंकि यह प्रत्यक्ष मृषावाद है।

प्रासंगिक पूर्ण हुआ। प्रकृत बात कहते हैं। यहाँ इस व्रत के अतिचार प्रकृत हैं, अतः सामायिक व्रत के अतिचार कहते हैं –
1. मनोदुष्प्रणिधान = सामायिक लेकर घर संबंधी कार्यों की चिंता करे, 'यह अच्छा हुआ, यह खराब हुआ' ऐसे सुकृत-दुष्कृत विचारे।
2. वाग्दुष्प्रणिधान = सामायिक लेकर असभ्य-निष्ठुर-सावद्य वचन प्रयोग करे।
3. कायदुष्प्रणिधान = सामायिक लेकर अप्रत्युपेक्षित-अप्रमार्जित भूमि वि. पर हाथ-पैर वि. शरीर के अवयव जैसे-तैसे रखे।
4. स्मृत्यकरण = सामायिक संबंधी उपयोग न करना। प्रबल प्रमाद वाला यह याद नहीं करता कि इस समय मुझे जो सामायिक करना थी, वह मैंने की या नहीं।

5. अनवस्थितकरण = सामायिक अनवस्थित करना यानि अल्पकाल के लिए करना अथवा लेने के बाद तुरंत पार देना अथवा जैसे-तैसे अविधि पूर्वक करना।

अब. दूसरा शिक्षापद –

सूत्र दिसिव्वयगहियस्स दिसापरिमाणस्स पइदिणं परिमाणकरणं देसावगासियं, देसावगासियस्स समणो... पंच... तं जहा- आणवणप्पओगे पेसवणप्पओगे सद्दाणुवाए रूवाणुवाए बहिया पुग्गलपक्खेवे ।०।

दिग्व्रत की व्याख्या पहले की है। वह व्रत यावज्जीव-वर्ष-५मासा वि. दीर्घ काल के लिए १०० यो. वि. रूप लिया है। किंतु इतना परिमाण रोज जाना अशक्य होने से प्रतिदिन अथवा प्रहर, मुहूर्त वि. उसका प्रमाण करे अर्थात् दिन वि. में जाने योग्य देश का स्थापन करे, यह देशावकाशिक व्रत है।

दिग्व्रत में ग्रहण किए हुए दिशापरिमाण का एक भंश = देश। उस देश में गमनादि-चेष्टा का अवकाश, देशावकाश। इससे निर्वृत्त देशावकाशिक।

यह व्रत अणुव्रत और गुणव्रत में ग्रहण की हुई दीर्घतर कालावधि की विरति का भी प्रतिदिन संक्षेप करने का उपलक्षण है अर्थात् ex. दिग्व्रत रूप गुणव्रत में की हुई १०० यो. वि. देश और यावज्जीव वि. काल की अवधि की विरति का रोज संक्षेप इस शिक्षाव्रत में होता है, वैसे ही प्रत्येक अणुव्रत और गुणव्रत में की हुई काल की अवधि का संक्षेप करने भी इसी व्रत में दिग्व्रत के उपलक्षण से है, ऐसा पूज्य वर्णन करते हैं। यदि ऐसा न माने तो उन व्रतों के विषय के संक्षेप का अभाव होगा अथवा संक्षेप होने

पर भी सब व्रत के अलग-अलग शिक्षाव्रत मानने पड़ेंगे।

यहाँ आचार्य सर्पदृष्टांत कहते हैं - जैसे दृष्टिविष सर्प की दृष्टि का विषय पहले 12 यो. था, फिर विद्यावादी ने उसे कम करते-करते 1 यो. में स्थापित किया। ऐसे ही श्रावक ने भी दिग्व्रत में बहुत दूर रखी, फिर देशावकाशिक व्रत से उसके विषय को भी कम करता है।
अथवा विषदृष्टांत - वैद्य पूरे शरीर में फैले हुए विष को 1 उंगली में स्थापित करता है। ऐसे श्रावक भी... ।

इस व्रत के अतिचार - 1. आनयनप्रयोग = विशिष्ट अवधि वाले भूप्रदेश का अभिग्रह लेने के बाद स्वयं वहाँ न जाने से दूसरे को संदेश देकर सचित्तादि द्रव्य लाने भेजे 'तुझे यह लाना है' वि.।
2. प्रेष्यप्रयोग = प्रेष्य यानि कार्य में जिसे जबरजस्ती जोड़े। उसका प्रयोग यानि अभिग्रह लिए हुए प्रदेश को उल्लंघने के भय से प्रेष्य को 'तू जाकर इतना अवश्य करके आ' ऐसा कहकर भेजे।
3. शब्दानुपात = स्वयं घर या किले की मर्यादा वाला व्रत लिया हो। उस घर या किले के बाहर प्रयोजन उत्पन्न होने पर वहाँ स्वयं न जाने से घर या किले के आस-पास बाहर रहे हुए लोगों को बुद्धिपूर्वक छींक-खाँसी वि. आवाज का उन्हें प्रयोजन का बोध दे। शब्द का उच्चार ऐसे करता है कि शब्द उनके कान में गिरे, इसलिए यह शब्दानुपात कहा जाता है।
4. रूपानुपात = अभिग्रह वाले देश से बाहर प्रयोजन होने पर शब्द का उच्चार न करते हुए ही दूसरों को पास में बुलाने के लिए स्वयं के शरीर का रूप (इशारे वि.) दिखाए।
5. बाह्यपुद्गलप्रक्षेप = अभिग्रह वाले देश के बाहर प्रयोजन होने पर दूसरे को बोध

देने के लिए लेष्टु वि. फेंके।

देशावकाशिक व्रत इसलिए ग्रहण किया जाता है कि बाहर गमन-आगमनादि व्यापार से प्राणी का उपमर्दन न हो। वह स्वयं करे या अन्य से कराए, फल में कोई भेद नहीं है बल्कि स्वयं बाहर जाने में त्याग है क्योंकि स्वयं ईर्यापथ की विशुद्धि पूर्वक जाए, दूसरा अनिपुण होने से अशुद्धि होगी।

अब. तीसरा शिक्षाव्रत -

सूत्र पोसहोववासे चउव्विहे पन्नत्ते, तं जहा- आहारपोसहे सरीरसक्कारपोसहे बंभचेर-पोसहे अव्वावारपोसहे, पोसहोववासस्स समणो.... तं जहा- अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहियसिज्जासंथारए अपमज्जियदुप्पमज्जियसिज्जासंथारए अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहियउच्चारपासवणभूमीसो अप्पमज्जियदुप्पमज्जियउच्चारपासवण-भूमीसो पोसहोववासस्स सम्मं अणणुपालणया 11।

पोषध शब्द रूढ़ि से पर्व अर्थ में वर्तता है। अष्टमी वि. तिथि पर्व है।
पूरणात् पर्व, धर्म के उपचय के हेतु होने से।
पोषध यानि पर्व में उपवास पोषधोपवास। ये पोषधोपवास नियम विशेष का ~~नियम~~ नाम है।

यह पोषधोपवास 4 प्र. का है - 1. आहारपोषध = आहार विषयक या आहार निमित्तक पोषध। अर्थात् आहार के त्याग के निमित्त वाला धर्म को पूरने वाला पर्व - पोषध।

2. शरीर सत्कार पोषध = शरीर सत्कार के त्याग का पर्व।
3. ब्रह्मचर्य पोषध = ब्रह्म यानि कुशल अनुष्ठान। कहा गया है - ब्रह्म वेदा ब्रह्म

तपो, ब्रह्म ज्ञानं च शाश्वतम् | चर्य पानि आचरने योग्य | ब्रह्म ऐसा चर्य ब्रह्मचर्य अर्थात् आचरने योग्य ऐसे ब्रह्म निमित्तक पोषध |

अव्यापार पोषध = व्यापार त्याग निमित्तक पोषध |

५.

भावार्थ- आहारपोषध २प्र.- देश = कुछ विगई का त्याग या आयंबिल या एकासना या बियासना |

सर्व = चारों प्र. के आहार का अहोरात्र तक त्याग |

शरीरसत्कार पोषध = स्नान, उद्वर्तन, विलेपन, पुष्प, गंध, तंबोल, वस्त्र, अलंकार का त्याग | यह भी २प्र. देश = कुछ सत्कार का त्याग |

सर्व = सबका त्याग |

ब्रह्मचर्य पोषध = २प्र. देश = दिन में अब्रह्म का त्याग अथवा रात में त्याग अथवा रात में १ या २ बार अब्रह्म सेवन की छूट |

सर्व = अहोरात्र तक संपूर्ण त्याग |

अव्यापार पोषध - देश = कुछ व्यापार का त्याग |

सर्व = तेल-गाड़ी-घर का परिकर्म वि. सबका त्याग |

यहाँ जो श्रावक देशपोषध करता है, वह सामायिक करे या न भी करे | किंतु जो सर्व पोषध करता है, वह नियमा सामायिक करता है अन्यथा ठगाने की संभावना है | वह चैत्यगृह, साधु के पास, घर या पोषधशाला में पोषध को | मणि-सुवर्ण का त्याग करे, पुस्तक पढ़ता हुआ धर्मध्यान करे कि मंदभाग्य वाला मैं इन साधुगुणों को धारण करने में असमर्थ हूँ... |

इस व्रत के अतिचार-

1. अप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षितशय्यासंस्तारक ⇒ जो पोषधोपवास वाले श्रावक द्वारा दर्भ-कुश-कामली-वस्त्र वि. नीचे बिछाया जाए, वह संस्तारक। शय्या यानि वसति। ऐसे संथारे और शय्या को चक्षु से देखना बारीकाई से देखना, निरीक्षण करना प्रत्युपेक्षण। ~~संथ~~ संथारा-शय्या का निरीक्षण न करना, या दुष्ट रीति से, भ्रांत चित्त से निरीक्षण करना ही अतिचार। संथारा-शय्या उपयोगी ऐसे पीठकादि का उपलक्षण है।

2. अप्रमार्जितदुष्प्रमार्जितशय्यासंस्तारक ⇒ प्रमार्जन यानि शय्यादि के आसेवन काल में वस्त्र के छेड़े वि. से पूंजना। बराबर न पूंजना या अविधि से पूंजना दुष्प्रमार्जना। ऐसे पूंजे बिना या बराबर न पूंजे पर शय्यादि के सेवन में अतिचार।

3. ~~उच्चास~~ अप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षित उच्चारप्रस्रवणभूमि = पडिलेहन किए बिना या अविधि से पडिलेहनकर मात्रु-स्थंडिल की भूमि पर परठना।

4. अप्रमार्जितदुष्प्रमार्जित उच्चारप्रस्रवणभूमि = Same as above.
मात्रु-स्थंडिल थूंक-पसीना-मैल वि. का उपलक्षण है।

5. पोषधोपवास असम्यगनुपालन = प्रवचनोक्त विधि पूर्वक एकाग्र चित्त से पोषधोपवास का पालन न करना।

भावार्थ- अस्थिर चित्त वाला पोषध करे तो आहार में देश या सर्व की प्रार्थना करता है अथवा दूसरे दिन पारणे में स्वयं के लिए आरंभ करे या 'यह करना' ऐसा आरंभ कराए। शरीर सत्कार में शरीर का उद्वर्तन करे या दाढ़ी-केश-रोम को श्रृंगार के अभिप्राय से व्यवस्थित करे अथवा गर्मी लगने पर शरीर पर पानी से सिंचन करे, ऐसे शरीर की शुश्रूषा के सभी कारणों का सेवन करे। ब्रह्मचर्य में ऐहलौकिक या पारलौकिक भोगों की प्रार्थना करे अथवा मनोमन पीड़ित रहे अथवा शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गंध का अभिलाष करे, 'कब मैं ब्रह्मचर्य पोषध पूरा हो' ऐसी चिंता करे अथवा 'मैं रह गया, मुझे स्त्री का त्याग करना पड़ा' वि. पश्चात्ताप करे। अव्यापार पोषध में सावद्य व्यापार करे अथवा किए हुए और न किए हुए व्यापार का चिंतन करे। ऐसे ५ अतिचार से शुद्ध व्रत का पालन करना चाहिए।

अब- चौथा शिक्षाव्रत-

सूत्र अतिहिसंविभागो नाम नायागयाणं कप्पणिज्जाणं अन्नपाणाईणं दव्वाणं देसकालसद्धासक्कारकमजुअं पराए भत्तीए आयाणुग्गहबुद्धीए संजयाणं दाणं, अतिहिसंविभागस्स समणो.... तं जहा- सच्चित्तनिक्खेवणया सच्चित्तपिहणया कालइक्कमे परववएसे मच्छरिया य 12।

भोजन के लिए भोजन काल में उपस्थित होने वाला अतिथि कहलाता है। स्वयं के लिए बनाए हुए आहार वाले गृहस्थ को साधु ही मुख्य अतिथि है। उसका संविभाग = अतिथि संविभाग। संविभाग = सम्यक प्रकार से भाग करना। इस पद से पश्चात्कर्म वि. दोषों का निषेध किया।

न्याय से प्राप्त हुए अर्थात् द्विज-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रों के स्व-स्व जाति के उचित व्यवसाय लोक में प्रसिद्ध है। उन उचित व्यवसाय से प्राप्त ऐसे अन्नपानादि।

इस पद से अन्याय से प्राप्त द्रव्यों का निषेध कहा।
कल्पनीय यानि उद्गमादि दोषों से रहित ऐसे अन्नपानादि द्रव्य। इस पद से अकल्पनीय का निषेध कहा।
अन्नपानादि द्रव्य। आदि पद से वस्त्र-पात्र-औषध-भेषज वि.। इस पद से हिरण्य वि. वस्तु का निषेध कहा।
देश-काल-श्रद्धा-सत्कार-क्रम से युक्त⇒ अलग-अलग प्र. के चावल, कंगु, गेहूँ वि. की निष्पत्ति वाला देश। सुभिक्ष-दुर्भिक्षादि काल। चित्त के विशुद्ध परिणाम श्रद्धा। अभ्युत्थान-आसनदान-वंदन-अनुव्रजन वि. सत्कार। पेय वि. की परिपाटी से पात्र का दान, यह क्रम (अर्थात् पहले Liquid दोराना ... वि. क्रम) इन देशादि से युक्त ऐसा दान। इस पद से देश-काल वि. से अनुचित दान का निषेध कहा।
उत्कृष्ट भक्ति से, इस पद से फल की प्राप्ति में भक्ति द्वारा किया जाने वाला अतिशय कहा अर्थात् जितनी भक्ति ज्यादा, उतना फल ज्यादा।
आत्मानुग्रह की बुद्धि से अर्थात् दान स्वयं पर अनुग्रह की बुद्धि से देना चाहिए, साधु पर मैं अनुग्रह करता हूँ, ऐसी बुद्धि से नहीं।
संयत= मूल-उत्तर गुण से संपन्न।

[भावार्थ- न्याय से प्राप्त और कल्पनीय ऐसे अन्नपानादि द्रव्यों का उत्कृष्ट भक्ति से और आत्मानुग्रह की बुद्धि से साधुओं को देश-काल-सत्कार-श्रद्धा-क्रम से युक्त ऐसा दान अतिथि संविभाग है।]

सामाचारी- श्रावक पोषध में हो तब नियमा साधु को दान दिए बिना न पारे। पच्चक्खाण पोषध में न हो तब साधु को दोराकर पच्चक्खाण पारे या पहले पारे, यह नियम नहीं है।

जब दान देने का देश-काल हो तब स्वयं के शरीर की विभूषा करके साधु के उपाश्रय जाकर निमंत्रण करे - भिक्षा ग्रहण करो। तब एक साधु पल्ले पडितेहन करे, एक मुहपत्ति, एक पात्रे जिससे अंतराय दोष या रखने के दोष न लगे। श्रावक यदि प्रथम पोरसी में ~~चउविहेण~~ करे, नवकारसी वापरने वाले साधु हो तो ग्रहण करे। यदि वापरने वाले निमंत्रण न हो तो ग्रहण न करे, क्योंकि ग्रहण करेंगे तो दोपहर तक रखना पड़ेगा। यदि बहुत विनंती करे तो ग्रहण करे और रख ले अथवा यदि कोई साधु पोरसी पच्चक्खाण पारने वाले हो तो उन्हें दे। तो विनंति करे तब एक साधु संघाटक इस श्रावक के साथ जाए। अकेले साधु को जाना नहीं कल्पता है। साधु आगे चले, श्रावक पीछे चले। घर लेजाकर आसन पर बैठने की विनंति करे। यदि साधु बैठे तो बहुत अच्छा, न बैठे तो भी उनका विनय होता है। फिर भक्त पान स्वयं दे अथवा स्वयं भाजन पकड़े, श्राविका दे अथवा श्राविका कोराए तब तक खड़े रहे। साधु भी सर्वशेष सहित द्रव्य ग्रहण करे अर्थात् भाजन पूरा खाली न करे जिससे पश्चात्कर्म दोष न लगे। देकर वंदन कर विसर्जन करे। विसर्जन कर पीछे छोड़ने जाए। फिर आकर स्वयं भोजन करे। जो द्रव्य साधु को न दिए हो, वह श्रावक को नहीं वापरना चाहिए।

यदि साधु नहीं है तो देश-काल में दिशावलोक करे और विशुद्ध भाव से विचारे - यदि साधु होते तो मेरा निस्तार होता वि.।

इस व्रत के अतिचार -

1. सचित्त निक्षेप = नहीं देने की बुद्धि से माया पूर्वक अन्नादि को सचित्त धान्य वि. पर रखे।
2. सचित्त पिधान = सचित्त फलादि से ढाँक दे।
3. कालातिक्रम = साधुओं के उचित भिक्षाकाल के पहले या बाद में भोजन करे।

4. परव्यपदेश = पोषधोपवास के पारणे में भिक्षा के लिए उपस्थित साधु सन्नारि को पुगए देखे तो श्रावक (न देने की बुद्धि से) कहे - यह दूसरे का है, हमारा नहीं है इसलिए मैं नहीं दूँगा। अथवा किसी वस्तु की साधु ने याचना की हो तो बोले - यह वस्तु अमुक श्रावक के यहाँ है ही, वहाँ ~~से ले लो~~। जाकर माँगो।

5. मात्सर्य = ~~माँगने पर गुस्सा करे~~, वस्तु होने पर भी न दे अथवा ~~माँगने~~ माँगने पर इस (गरीब) क्रमक ने भी दिया, तो मैं ~~मैं~~ क्या उससे भी नीचे हूँ ऐसे दूसरे की ईर्ष्या से दे। अर्थात् कषाय से कलुषित ऐसे चित्त से देते हुए को मात्सर्य है।

चौथा शिक्षाव्रत कहा गया। यह श्रावक धर्म है।

अब. प्र. इन अणुव्रतादि में से कौन से व्रत इत्वरकालिक और कौन से व्रत यावत्कथिक हैं? उ.—

सूत्र इत्थं पुण समणोवासगधम्मे पंचाणुव्वयाइं तिन्नि गुणव्वयाइं आवकहियाइं, चत्तारि सिक्खावयाइं इत्तरियाइं, एयस्स पुणो समणोवासगधम्मस्स मूलवत्थुं सम्मत्तं, तं जहा - तं निसग्गेण वा अभिगमेण वा पंचअइयारविसुद्धं अणुव्वय-गुणव्वयाइं च अभिग्गहा अन्ने उवि पडिमादओ विसेसकरणजोगा, अपच्छिमा मारणंतिया संलेहणाझूसणाराहणा य, इमीए समणोवासएणं इमे पंच.... तं जहा- इहलोगासंसप्पओगे परलोगासंसप्पओगे जीवियासंसप्पओगे मरणासंसप्प-ओगे कामभोगासंसप्पओगे 13।

यहाँ ही श्रमणोपासक धर्म में, पुनः शब्द अवधारण अर्थ वाला है। अतः यहाँ ही अर्थात् जैन श्रमणोपासक धर्म में ही, बौद्ध वि. श्रमणोपासक धर्म में नहीं क्योंकि आगे कहेंगे श्रमणोपासक धर्म का मूल सम्यक्त्व है और

बौद्ध वि. श्रमणोपासक धर्म में सम्यक्त्व न होने से अणुव्रत वि. संभव नहीं है।

यहाँ जैनश्रमणोपासक धर्म में ही ५ अणुव्रत और ३ गुणव्रत यावत्कथिक हैं अर्थात् एकबार ग्रहण करने पर यावज्जीव तक भी होते हैं। ४ शिक्षाव्रत इत्वर कालिक हैं। इन ४ शिक्षाव्रतों में सामायिक और देशावकाशिक प्रतिदिन करने योग्य हैं, पोषधोपवास और अतिथि संविभाग नियत पर्व तिथि पर ही करने योग्य हैं रोज नहीं।

प्र. इस ~~श्राव~~ श्रमणोपासक धर्म की मूलवस्तु क्या है? उ. मूलवस्तु यानि द्वार रूप। इस श्रमणोपासक धर्म का द्वार सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व प्रशम-संवेग-निर्वेद-अनुकंपा-आस्तिक्य का प्रगटीकरण रूप लक्षण वाला है।

प्र. यह सम्यक्त्व कैसे होता है? उ. निसर्ग से = स्वभाव से अथवा अधिगम यानि पदार्थ के यथावस्थित ज्ञान/बोध से।

प्र. यह सम्यक्त्व तो मिथ्यात्वमोहनीय के क्षयोपशमादि से होता है सो आप निसर्ग वि. क्यों कहते हो?

उ. वह क्षयोपशम वि. ही निसर्ग और अधिगम से होते हैं।

इस संसार समुद्र में सम्यक्त्वादि भाव रत्न की प्राप्ति दुष्कर है, ऐसा जानकर जिनप्रवचन के सार को जानने वाले श्रावक को अप्रमाद में तत्पर और अतिचार के परिहार में तत्पर होना चाहिए। इसी अर्थ को विशेष से कहने के लिए और नहीं कहे अर्थ को कहने के लिए ग्रंथकार 'पंचातिचारविसु' वि. कहते हैं—

यह सम्यक्त्व, अणुव्रत-गुणव्रत और त्रीन्च वि. के अभिग्रह श्रावक को अत्यंत अतिचाररहित पालना चाहिए। अन्य भी प्रतिमा वि. विशेषकरण-योग सम्यक् रूप से पालना चाहिए। (प्रतिमाएँ 'इगारसहिं उवासगपडिमाहिं' सूत्र में कही गई भाग Pg.)। आदिशब्द से अनित्यादि भावना लेना। तथा अंतिम मारणान्तिकी संलेखना भी अतिचार रहित करना चाहिए।

मरण रूप अंत मरणान्त। इसमें होने वाली मारणान्तिकी (इकण्)। जिससे शरीर-कषाय वि. पतले हो वह संलेखना $, तप विशेषरूप।

साम्राचारी - गृहस्थ धर्म का सेवन करने वाले श्रावक को बाद में दीक्षा लेना चाहिए। इससे श्रावक धर्म सफल होता है। यदि शक्य न हो तो भक्त-पच्चाख्यान के समय संथारे में महाव्रत उच्चर कर श्रमण होना चाहिए।

संलेखना के अतिचार - 1. इहलोकाशंसाप्रयोग - इहलोक यानि मनुष्य लोक, मनुष्य लोक की आशंसा का प्रयोग। जै. मैं श्रेष्ठी या मंत्री बनूँ वि.।

2. परलोकाशंसाप्रयोग - परलोक यानि देवलोक। देवलोक की आशंसा रखे।

3. जीविताशंसाप्रयोग - जीवन की इच्छा रखे। जै. बहुत समय तक मैं जीऊँ वि.। वस्त्र-माला-पुस्तक वाचनादि रूप पूजा और बहुत परिवार देखने से यह आशंसा होती है। लोगों की प्रशंसा सुनकर भी ऐसा मानता है कि अनशन लेने पर भी जीवन ही अच्छा है।

4. मरणाशंसाप्रयोग - अनशन स्वीकारने वाले को कोई पूँछता नहीं है, पूजा से आदर न करे, प्रशंसा न करे तो इसे ऐसा परिणाम होता है कि मंदभाग्य वाला मैं जल्दी ~~मर~~ मर जाऊँ।

5. कामभोगाशंसाप्रयोग - अगले जन्म में चक्री या वासुदेव या महामंडलिक

राजा या सौभाग्यवान् या रूपवान् बनूँ।

अब श्रावकधर्म कहा गया। ऐसे देश उत्तरगुण प्रत्याख्यान का भेद सहित व्याख्यान हुआ (देखें पृ.90 पर भा. 244)[देश उत्तरगुण और देश मूलगुण प्रत्याख्यान का वर्णन पूर्ण हुआ] सर्व उत्तरगुण प्रत्याख्यान बाकी है, अब यही कहते हैं- अथवा देश उत्तरगुण प्रत्याख्यान श्रावकों को ही होता है इसलिए उनके अधिकार में कहा। अब सर्व उत्तरगुण प्रत्याख्यान कहते हैं - यह प्रत्याख्यान त्रिविध से दोनों को होता है इसलिए श्रावक के अधिकार के बाद कहते हैं -

गा. 1585 उत्तरगुण विषयक प्रत्याख्यान क्षपणादि अनेक प्र. का है। चौथ भक्त, विचित्र अभिग्रह वि.। इन प्रत्याख्यान का यहाँ सर्वोत्तरगुण प्रत्याख्यान में अधिकार है। ये सब पर्याप्त हैं, मूल से तो 10 प्र. ही हैं।

गा. 1586- (द्वार गा. 67) 1. अनागत 2. अतिक्रान्त 3. कोटिसहित 4. नियंत्रित 5. साकार (सागार) 6. अनाकार 7. परिमानकृत 8. निरवशेष 9. संकेत 10. अद्धा।

1. अनागत - ~~पहले~~ पर्व तिथि के पहले ही प्रत्याख्यान करना। eg. पर्युषणादि में आचार्यादि की वैयावृत्त्य करने में तप से अंतराय होगा इसलिए पर्युषण के पहले ही वह तप करले। गा.
2. अतिक्रान्त - पर्व तिथि के बाद प्रत्याख्यान करना।
3. कोटि सहित - 2कोटि सहित का पच्चक्खाण अर्थात् 2पच्चक्खाण के छेड़े इकट्ठे टीप होना। eg. चौथ भक्त में उपवास और बाद के एकासने का पच्चक्खाण एकसाथ छट्ठ में दूसरे उपवास के दिन का पच्चक्खाण कोटि सहित क्योंकि उसमें पहले उपवास का अंतिम समय और दूसरे उपवास का प्रथम समय मिश्र।
4. नियंत्रित - जो पच्चक्खाण प्रतिज्ञात दिन वि. में ग्लानादि को अंतराय होने पर भी अवश्य करना पड़े।

5. सागार - आगार सहित पच्चक्खाण।
6. अनागार - आगार रहित।
7. परिमाणकृत - दत्ति वि. से जिसमें परिमाण करा हो।
8. निरवशेष - समग्र अशनादि विषयक पच्चक्खाण।
9. संकेत - अंगुठा वि. चिह्न के साथ।
10. अद्धा - पोरसी वि. काल के साथ।

प्र. ये पच्चक्खाण भी क्या प्राणातिपातादि की तरह करण-करावण वि. भेद से पालन करने योग्य हैं?

उ. नहीं, स्वयं ही पालन करने योग्य हैं, करावण - अनुमिति में निषेध नहीं है। अन्य को आहार देने में और साधु को दान देने के उपदेश में समाधि अनुसार प्रवृत्त होना चाहिए। स्वयं को पीड़ा न हो, ऐसे साधु को दान देना चाहिए।

प्रवि. 1. अनागत प्रत्याख्यान -
गा. 1568-9 'यदि पर्युषण में मुझे तप होगा तो गुरुवैयावृत्त्य अथवा तपस्वी-ग्लान को अंतराय होगा' इसलिए वह साधु पर्युषण के पहले ही तप करता है, इसे अनागत प्रत्याख्यान कहते हैं।

टीप्पणक भावार्थ - यहाँ पाक्षिक और चातुर्मासिक की अपेक्षा पर्युषण में अट्ठम रूप बड़ा तप किया जाता है इसलिए भूत गाथा में 'पज्जोसवणा' ग्रहण किया। बाकी तो पर्युषण में अट्ठम की तरह चौमासी में छट्ठ, पाक्षिक में उपवास, तीर्थंकर के स्नात्र महोत्सव और रथयात्रा रूप अनुष्ठान में यथाशक्ति तप किया ही जाता है। पर्युषण में जो अट्ठम किया जाता है, वह विकृष्ट तप में सर्वजघन्य है।

वह विवक्षित साधु सोचता है कि पर्युषण में गुरु की भक्त पानादि रूप

वैयावच्च करना है, उससे तप में अंतराय होगा।
यहाँ "गुरु की भक्तपानादि रूप वैयावच्च को मन में रखकर शंकाकार पूछता है-
प्र. गुरु भी पर्युषण में उपवास क्यों नहीं करते? यदि वे उपवास करे तो साधु
को गुरु की वैयावच्च न करना पड़े।
उ. क्योंकि गुरु उपवास करने में असमर्थ होते हैं, इसलिए तप न करे। और
यदि गुरु उपवास करे तो गुरु की वैयावच्च न करना पड़े, ऐसा नहीं है क्योंकि
मात्र भक्तादि लाना ही वैयावच्च नहीं है। अन्य भी वैयावच्च बताते हैं -
उस दिन गुरु अन्य गाँव वि. में भेजे अथवा शैक्ष (नए साधु) के लिए भक्तादि
लाना हो अथवा व्याख्यानादि से थके हुए गुरु के शरीर पर कुछ वैयावच्च करना
हो, इस प्रकार अन्य भी गुरु वैयावच्च संभव है।
यदि वह विवक्षित साधु उपवास करे तो वैयावच्च शक्य न हो इसलिए विधि
कहते हैं -
पर्युषण में
वह विवक्षित साधु या अन्य कोई साधु उपवास और वैयावच्च दोनों करने में
समर्थ हो तो वह करे, अनागत तप न करे। यदि दोनों करने में कोई भी
समर्थ न हो तो जो साधु उपवास करने में समर्थ नहीं है, उस दिन वैसे ही
पच्चक्खाण पारने वाला है, वह वैयावच्च करे। यदि ऐसा साधु भी न हो अथवा
ऐसे साधु को भक्तपानादि प्राप्त न होते हो अथवा वह वैयावच्च की विधि
जानता न हो तो वही विवक्षित साधु अनागत तप करे।

तपस्वी यानि सपक, उसकी वैयावच्च के लिए भी अनागत तप किया जाता है।
उस तपस्वी की भक्तादि से उस दिन वैयावच्च करना चाहिए, ऐसा समझकर
शंकाकार शंका करता है -
प्र. वह तपस्वी पर्युषण में तप क्यों नहीं करता?
उ. उसने जो तप शुरु किया था, वह तप अभी ही पूर्ण हुआ होने से वह पर्युषण

में भी पारणा करता है।

प्र. पर्युषण में जो अट्ठम तप किया जाता है, वह ये क्षपक कब करेगा?

उ. उसने जो मासक्षमणादि तप किया हो, उसी में इस अट्ठम तप का अन्तर्भाव हो जाता है।

अथवा तप पूर्ण न हुआ हो किंतु 'यह असहिष्णु है' ऐसे स्वयं गुरु द्वारा उसे पारणा कराया गया हो तो भी वेयावच्च करना चाहिए।

हरिभद्रीय वृत्ति

उसकी विधि- यदि वह स्वयं गोचरी जाने में समर्थ हो तो पास के घरों में जाए। यदि पास में घर न हो अथवा तपस्वी के प्रायोग्य न मिलता हो तो जैसे आचार्य के वेयावच्च की विधि कही, वैसी यहाँ जानना।

ग्लान जानता हो कि उस दिन मैं असहिष्णु होऊँगा अथवा वैद्य ने कहा हो कि अमुक दिन औषधी लेना अथवा उन दिनों में वह गंडरोग वि. से असहिष्णु हो तो विधि गुरुवैयावृत्त्य विधि अनुसार।

अथवा कुल-गण-संघ-आचार्य-गच्छ का कोई भी कारण हो तो वही विधि जानना। वह अनागत काल में तप कर बाद में पर्युषण वि. में वापरकर भी उन-उन कार्यों को पूर्ण करे।

उसे पर्युषण में तप करने से जो निर्जरा होती है, वही अनागत काल में तप द्वारा होती है।

उप. 1. अनागत द्वार पूर्ण। 2. अतिक्रान्त द्वार- (देखें द्वार गा. 1566-7 पृ. 152

गा. 1570-1 जो गुरुवैयावृत्त्य या तपस्वी या ग्लान के कारण पर्युषण में तप नहीं करता, वह तप पर्युषण के बाद में करे, यह अतिक्रान्त प्रत्याख्यान है।

अव. 2. अतिक्रान्त द्वार पूर्ण | 3. कोटि सहित द्वार –

गा. 1572 जिस पच्चक्खान में एक पच्चक्खान का प्रारंभक दिन और दूसरे का समाप्ति दिन, दो ~~छेड़े~~ मिले वह कोटि सहित पच्चक्खाण।

भावार्थ – सुबह आवश्यक (प्रतिक्रमण) में उपवास का पच्च. लिया, अहोरात्र रहकर पुनः उपवास किया। उस समय एक की समाप्ति और एक की शुरुआत दो कोने एकत्र हुए। ऐसे ही ~~छह~~ छठ्ठ में तीसरे दिन 2 उपवास की समाप्ति की 2 कोटि और। उपवास की शुरुआत। ऐसे ही आयंबिल – निवि – एकासन एकट्ठाणा में भी जानना। (अर्थात् ये सभी एकसमान पच्चक्खाण के भांगे बताए – उपवास | उपवास, आयंबिल | आयंबिल ... वि. इ। सब समान पच्च. के भांगे –) कोई उपवास – आयंबिल – उपवास – आयंबिल करे। ऐसे ही एकासन – निवि. वि. सबके भांगे बनाना।

अव. 3. कोटि सहित द्वार | 4. पूर्ण नियंत्रित द्वार – (द्वार गा. 1566 Pg. 152) –

गा. 1573 मैं रोगी होऊँ या नीरोगी हर महिने इस-इस दिन यह छह वि. तप यावज्जीव करना।

गा. 1574 निदान रहित और क्षेत्रादि में अप्रतिबद्ध साधु ऐसा नियंत्रित पच्चक्खान लेते थे।

गा. 1575 प्र. यह पच्च. हमेशा किया जाता है? उ. नहीं, चौदपूर्वी, जिनकल्पी और प्रथम संघयण वाले साधु ही करते थे। अभी यह नाश हो गया।

प्र. उस समय सभी स्थविरादि ने यह पच्च. किया था? उ. हाँ, उस समय सभी करते थे।

टीप्पणक भावार्थ – नियंत्रित यानि नियमित पच्च. कि ~~छ~~ इस समय/मास/दिन में नियमा कोई तप मुझे करना अथवा कोई पहले ही विशेष अभिग्रह ले कि इस महि इस दिन यह तप नियमा करना। ऐसा चूर्णि का पाठ है। पहले में सामान्य से नि नियम है, दूसरे विकल्प में मास – दिन – तप का विशेष नियम है।

हरिभद्रीय इस दिन यह तप रोगी हूँ या नीरोगी अवश्य करना।

वृत्ति

अव. ५. नियंत्रित द्वार पूर्ण। ६. सागार द्वार –

गा. 1576 यह बड़ा है, यह बड़ा है, इन दोनों में यह ज्यादा बड़ा है वह महत्तर। ऐसे महत्तरागार और अनाभोगादि अन्य कारण होने पर 'मैं भोजन करूँगा' ऐसे जो प्रत्याख्यान करता है, वह सागारकृत पच्च.।

भावार्थ – आगारों सहित का पच्च. वह सागार। आगार आगे सूत्रानुगम में कहेंगे। उसमें महत्तरागार यानि बड़ा प्रयोजन होने पर e.g. उपवास का पच्च. लिया, फिर आ. ने कहा – इस गाँव जाना है। साधु – मुझे आज उपवास है। गुरु – यदि समर्थ है तो उपवास कर और जा। यदि समर्थ न हो तो अन्य कोई वापरने वाला या उपवास वाला जो समर्थ हो, वह जाए। अन्य न हो अथवा उस कार्य के लिए अन्य समर्थ न हो तो वही साधु गुर्वाज्ञा से अनभिलाष पूर्वक वापरकर जाए। उसे उपवास की निर्जरा ही होती है। ऐसे ही सुबह कोई विशेष द्रव्य प्राप्त हुआ हो, वह द्रव्य रखने पर दोपहर तक बिगड़ जाने की संभावना हो तो यदि थोड़ा हो तो नवकारसी या पोरसी वाले को दे अथवा कोई तपस्वी को पारणा हो तो उसे दे अथवा जो असहिष्णु हो उसे दे।

ऐसे ही ग्लान कार्य में या अन्य कारण में या कुल-गण-संघादि के कार्य में समझे।

अव. ६. सागार द्वार पूर्ण। ८. निराकार द्वार –

गा. 1577 जिस साधु को निश्चय पूर्वक आगार का प्रयोजन नहीं है अर्थात् आगार का फल उसे नहीं मिलने वाला है, वह साधु निरागार पच्चा. करता है।

यह पच्च. दुकाल या जंगल में होता है।
(अ अर्थात् जिस साधु को दुकाल या जंगल में गोचरी मिले, ऐसा है ही नहीं।
उनके लिए आगार का कुछ फल नहीं होता। इसलिए वे निरागार पच्च. करते हैं।

भावार्थ- जिस साधु को जंगल वि. में किसी भी तरह भिक्षा नहीं मिलने वाली है, वह साधु महत्तरादि आगार नहीं करता। अनाभोग और सहसाकार, दो ही आगार करता है। क्योंकि लकड़ी या उंगली अनाभोग से या सहसाकार से मुँह में चली जाए तो पच्च. भंग न हो।
जंगल में या इभील की पल्ली में, शत्रु ने गोचरी देने का निषेध किया हो अथवा दुकाल हो, बहुत घूमने पर भी गोचरी न मिले अथवा स्वयं बे जाने कि मैं अब जीऊँगा नहीं तब निरागार पच्च. ले।

अव. 6. निराकार द्वार पूर्ण। 7. कृतपरिमाण द्वार- (देखें द्वार.गा. 1566-1 Pg. 152)
गा. 1578 आहार का दत्ति, कवल, घर, भिक्षा अथवा द्रव्यों से परिमाण करे।

भावार्थ- दत्ति से 'आज 1, 2, 3, 4 या 5 दत्ति लूँगा'। चम्मच से जितनी बार दे, उतनी दत्ति।
कवल में 'आज 1, 2, 3... 30 कवल तक लूँगा'। घर- 1, 2...।
भिक्षा में संसृष्ट, असंसृष्ट वि. में से 1, 2...।
द्रव्य में भात या कोई खाद्य विशेष या आयंबिल या मोरस वि. में से अमुक द्रव्य वापरना।

अव. 7. कृतपरिमाण द्वार पूर्ण। 8. निरवशेष द्वार -

गा. 1579 सर्व अशन, सर्व पान, सर्व खाद्य-भोज्य प्रकार का सर्व भावों-प्रकारों से त्याग, यह निरवशेष पच्च.।

भावार्थ - जो शालि वि. 17 प्र. के अशन, शक्कर का पानी वि. अनेक प्र. के पानी, फल वि. अनेक प्र. के खादिम और शहद वि. अनेक प्र. के स्वादिम, इन सबका त्याग करे। यह निरवशेष पच्च.।

अब. 8. निरवशेष द्वार पूर्ण। 9. संकेत द्वार -

गा. 1580 अंगुठा, मुट्ठी, गाँठ, घर, पसीना, श्वास, पानी के बुलबुले, दीपक की ज्योति वि. को चिह्न कर जो पच्च. किया जाए, वह संकेत पच्च.।

भावार्थ - केत यानि चिह्न, चिह्न सहित संकेत। वह साधु या श्रावक पच्च. पूर्ण होने पर भी किसी चिह्न का अभिग्रह करे कि जब तक ऐसा है तब तक मैं नहीं पारूँगा। वे चिह्न ये हैं - अंगुष्ठ, मुट्ठी, ग्रंथि, घर, पसीना, श्वास, पानी के बूँद, दीपक।

~~स्साहस्स~~ - एक श्रावक पोरसी का पच्च. कर खेत गया या घर रहा। पोरसी का पच्च. आने पर भी वह जीमता नहीं है। उस समय जब तक वह न जीमे तब तक भी पच्च. बिना नहीं रहना चाहिए इसलिए वह श्रावक चिह्न करता है कि जब तक अंगुठा मोड़ूँ नहीं या मुट्ठी करूँ नहीं या गाँठ खोलूँ नहीं या घर जाऊँ नहीं या पसीना सूखे नहीं या इतने श्वास न हो या ये पानी की बूँद सूखे नहीं या ओस की बूँद सूखे नहीं या दीपक जल रहा है तब तक मैं नहीं जीमूँगा। केवल भोजन में नहीं अन्य भी विशेष अभिग्रहों में संकेत होता है।

ऐसे साधु को पच्च. आने पर पच्च. बिना न रहने के लिए संकेत करना चाहिए।

अव. 9. संकेत द्वार पूर्ण। 10. अद्धा द्वार – (द्वार गा. 1566-7 Pg. 152)

गा. 1881 काल प्रमाण के अवच्छेद से पच्च. करना - पुरिमड्ढ, पोरसी, मुहूर्त, मास, अर्द्धमास वि.।

भावार्थ – नवकारसी, पोरसी, पुरिमड्ढ, एकासना, ... यावत् 6 मास तक।
(ग्रंथाग्र - 2500)

अव. 10. अद्धा पच्च. द्वार पूर्ण। उपसंहार –

गा. 1882 10 प्र. का पच्चाख्यान गुरु के उपदेश से कहा गया। पच्च. करने वाले की विधि संक्षेप में कहूँगा।

गा. 1883-4 प्र. जैसे जीवघात का पच्च. करने पर अन्य के द्वारा भी जीवघात पच्च. भंग के भय से नहीं कराया जाता। ऐसे ही पच्च. वाले को अन्य को अशनादि के दान में भी पच्च. भंग का दोष लगेगा। अतः पच्च. वाले साधु को आचार्य-उपाध्याय-तपस्वी-शैक्ष-ग्लानादि अन्य को अशनादि नहीं देना चाहिए। यदि कोई ऐसा कहे कि 'अशनादि देने पर वैयावृत्त्य का लाभ मिलेगा' तो ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि वैयावृत्त्य के लाभ से भी विरति का पालन अधिक प्रधान है।

गा. 1885-86 उ. यह पच्च. त्रिविध-त्रिविध से गृहण नहीं किया है। इसलिए अन्य को दान में भी पच्च. भंग नहीं होता। तथा निर्युक्तिकार ने भी पहले ही कहा कि यह पच्च. स्वयं ही पालना है। अतः दान और उपदेश का प्रतिषेध नहीं है। दान यानि स्वयं आहार लाना। उपदेश यानि गोचरी जाने वाले को दानश्राद्ध वि. के घर बताना।

गा. 1887 पच्च. वाले साधु को भी गोचरी मिले ऐसा हो तो वह स्वयं भी वीर्यचार के पालन से आचार्यादि के लिए गोचरी ले आए।

सामाचारी - दान - स्वयं को वापरना न हो तो भी अन्य के लिए गोचरी साधु लाए। स्वयं का सामर्थ्य हो तो दूसरे को भेजने प्रयत्न न करे। अतः उन्हें श्रावक या इतर के घर से या परिचित घरों से या संखड़ी में से ले आए या उन्हें दिलाए।

उपदेश - संविग्न ऐसा अन्यसांभोगिक साधुओं को दानश्राद्ध वि. के घर बताए। स्वयं में सामर्थ्य न हो तो सांभोगिक साधुओं को भी बताने में दोष नहीं है। स्वयं पानी वोरने या संज्ञा भूमि गए हो और संखड़ी देखी हो तो आकर साधुओं को कहे कि यहाँ संखड़ी है।

जिसे जैसे समाधि हो वैसा करे।

भा. 246 अन्य सांभोगिक साधु यदि समर्थ न हो तो उन्हें भी लाकर दे।

अब. प्रत्याख्यान की शुद्धि कहते हैं -

भा. 247 श्रमणों के सिद्धान्त के चिह्नरूप ऐसे तीर्थंकरों ने 6 प्र. की पच्च. की शुद्धि कही है, उसे मैं संक्षेप में कहूँगा।

गा. 1588 1. श्रद्धान शुद्धि, 2. ज्ञानशुद्धि, 3. विनयशुद्धि, 4. अनुभाषणा शुद्धि, 5. अनुपालना शुद्धि और 6. भावशुद्धि - ये 6 प्र. की शुद्धि है।

भा. 248 1. श्रद्धा शुद्ध - तीर्थंकर ने 27 प्र. का पच्च. कहा है - 5 महाव्रत + 10 प्र. उत्तरगुण पच्च. + 12 श्रावक पच्च.।

~~इन~~ ये 27 प्र. के पच्च. की जिनकल्प में या स्थविरकल्प में, चतुर्याम या पंचयाम साधुधर्म में या श्रावकधर्म में, सुभिक्ष में या दुर्भिक्ष में, पूर्वाह्ण में या अपराह्ण में अथवा अंतिम समय, जहाँ - जिस काल में जो पच्च. तीर्थंकर द्वारा कहा गया है, वैसे उसकी जो मनुष्यश्रद्धा करे, वह मनुष्य उस पच्च. में परिणत होने से अभेद उपचार से पच्च. ही कहा जाता है। अतः वह मनुष्य और उसका पच्च. दोनों श्रद्धाशुद्ध होता है।

गा. 249 2. ज्ञानशुद्ध - जो मूल-उत्तर गुण पच्च. जिनकल्प वि. जहाँ करने योग्य है, उसे वैसा जानना ज्ञान शुद्ध पच्च. है। (मनुष्य और पच्च. का अभेद उपचार सभी जगह जानना।

गा. 250 3. विनयशुद्ध - जो मनुष्य पच्चाख्यान के समय वंदन की मन्यूनातिरिक्त विशुद्ध क्रिया करता है, उसका पच्च. विनय शुद्ध जानना।

गा. 251 4. अनुभाषणा शुद्ध - वंदन करने के बाद गुरु पच्च. बोले तब कुछ कम आवाज से गुरु के वचन का अक्षर-पद-व्यंजनों से शुद्ध ऐसा अनुभाषण करे। गुरु बोले- वोसिरह, तब यह शिष्य 'वोसिरामि' बोले, शेष गुरु के समान बोले। पच्च. लेते हुए हाथ जोड़कर गुरु के अभिमुख खड़े रहकर अनुभाषण करे। यह पच्च. अनुभाषणा से शुद्ध है।

गा. 252 5. अनुपालना शुद्ध - जंगल में या दुर्भिक्ष में या कोई ज्वरादि बड़ा आतंक-रोग उत्पन्न होने पर भी जिस पच्च. का पालन किया, भग्न न किया, वह पच्च. अनुपालना शुद्ध जानना। यहाँ 16 उद्गम दोष + 16 उत्पादना दोष + 10 एषणा दोष, ऐसे 42 दोष नित्य प्रतिषिद्ध हैं। इन 42 दोषों को जंगल-दुर्भिक्षादि में भी सेवन न करे, ऐसा भावार्थ है।

गा. 253 6. भावशुद्ध - राग से अथवा द्वेष से अथवा इहलोकादि की आशंसा वि. परिणाम से अथवा अहंकार वि. से जो पच्च. दूषित न हो, वह भावशुद्ध पच्च. है।
भावार्थ - राग से 'यह पूजा जाता, मैं भी ऐसा करूँ कि मेरी पूजा हो'।
द्वेष से 'वैसा करूँ कि सब लोग मेरे पास आए, उसके पास कोई न जाए'
परिणाम से इसलोक या परलोक या कीर्ति-यश-वर्ण या अन्नपान-वस्त्र या शयन-आसन-कंबल के लिए न करे।

गा. 254 इन श्रद्धा वि. 6 स्थान से जो पच्च. दूषित न हो, वह शुद्ध है। अश्रद्धा वि. से अशुद्ध होता है।

गा. 255 (गा. 253 में परिणाम से भाव अशुद्ध पच्च. कहा। उसमें अन्य परिणाम बताते हैं -)

अहंकार से, क्रोध से, अनाभोग से, अनापृच्छा से, असंपत्ति से, परिणाम से, अपाय से पच्च. अशुद्ध होता है।

भावार्थ - 1. अहंकार - इसकी पूजा होती है तो मैं भी पच्च. करूँ तो मेरी भी पूजा होगी।

2. क्रोध - गुरु द्वारा प्रतिचोयणा वि. द्वारा डाँटने पर शिष्य गुस्से से वापरता नहीं है और उपवास करता है।

3. अनाभोग - 'मुझे कौन सा पच्च. है' यह जाने नहीं और वापरने के बाद याद आए कि पच्च. भंग हुआ।

4. अनापृच्छा - मुझे वापरते हुए रोके नहीं कि तूने आज उपवास किया है इसलिए पूछे बिना वापर तो अथवा पूछे बिना वापरूँ तूँ फिर कह दूँगा कि भूल गया।

5. असंतति - यहाँ वापरने जैसा कुछ नहीं है इसलिए पच्च. करना ही अच्छा, ऐसा जानकर पच्च. करे।

6. परिणाम - पहले कहे हुए यश-कीर्ति वि.।

7. अपाय - 'मैं पच्च. नहीं करूँगा तो ये लोग मुझे गच्छ के बाहर निकाल देंगे', ऐसे डर से पच्च. करे।

जो विद्वान् यानि इन सब दोषों को जानने वाला होता है, वही इन अहंकारादि कारणों का त्याग कर सकता है। इसलिए उसका पच्च. शुद्ध होता है।

(यहाँ श्री आवश्यक सूत्र का भाष्य समाप्त होता है। अब आगे निर्युक्ति गाथाएँ ही हैं।)

अव. मूलद्वार गा. का A. प्रत्याख्यान द्वार पूर्ण (द्वार गा. 1558 Pg. 88)। शेष प्रत्याख्याता वि. 5 द्वार नाम निष्पन्ननिक्षेप के अंतर्गत हैं (देखें Pg. 88 अव.) किंतु उन्हें सूत्रानुगम के बाद कहेंगे।

प्र. ऐसा क्यों? उ. क्योंकि यहाँ भले ही कहा कि A. प्रत्याख्यान द्वार पूर्ण हो गया। किंतु परमार्थ से तो वह सूत्रानुगम से ही समाप्त होगा।

अतः नाम निष्पन्न निक्षेप में प्रत्याख्यान और अध्ययन, दो शब्द थे। प्रत्याख्यान शब्द की व्याख्या द्वार गा. 1538 के 6 द्वारों से कही (6 द्वार बाद में कहेंगे)। अब अध्ययन शब्द का अवसर है किंतु वह पहले ही विस्तार से कहा गया होने से यहाँ नहीं कहते। अतः नाम निष्पन्न निक्षेप द्वार पूर्ण। (देखे अनुयोग द्वार Part भाग 1 Pg. 111)

अब सूत्रालापक निष्पन्न निक्षेप का अवसर है। वह सूत्र होने पर होता है। सूत्र अनुगम में होता है। अनुगम 2 प्र.- सूत्रानुगम, निर्युक्त्यनुगम। निर्युक्त्यनुगम 3 प्र.- निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम, उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगम, सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम। निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम में ओघ और 4 नाम निष्पन्न निक्षेप कहे, सूत्रालापकनिष्पन्न आगे कहेंगे। उपोद्घातनिर्युक्ति गा. 140-1 उद्देसे णिद्देसे प.- और किं कतिविधं.. द्वार गा. से जानना। सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति सूत्र होने पर कहते हैं। सूत्र सूत्रानुगम में कहते हैं। अब सूत्रानुगम का ही अवसर है।

सूत्र, सूत्रानुगम, सूत्रालापक निष्पन्न निक्षेप, सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति और नय- ये 6 द्वार साथ में चलेंगे।

इस संबंधी प्रश्नोत्तरी सामायिक अध्ययन में कही हुई है (वहाँ से जानना)

यह सूत्र है -

सूत्र सूरे उग्गए णमोक्कारसहितं पच्चक्खाइ चउविहंपि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं, अण्णत्थ अणाभोगेणं सहसाकारेण वोसिरइ।

सूत्र की व्याख्या का लक्षण - संहिता च पदं चैव पदार्थः पदविग्रहः।
चालना प्रत्यवस्थानं व्याख्या तन्त्रस्य षड्विधा॥

संहिता यानि पदों का अस्खलित उच्चारण।

पद - सूर्ये उद्गते नमस्कारसहितं प्रत्याख्याति चतुर्विधमपि आहारं अशनं पानं खादिमं स्वादिमं अन्यत्रानाभोगेन सहसाकारेण ~~मुञ्चति~~ व्युत्सृजति।

पदार्थ- जो ~~खाया जाए~~ भोजन किया जाए वह अशन, जो पीया जाए वह पान, जो खाया जाए वह खादिम, जिसका स्वाद लिया जाए स्वादिम। अन्यत्र शब्द वर्जन अर्थ में eg. अन्यत्र द्रोणभीष्माभ्यां सर्वे योधाः पराङ्मुखाः। अनाभोग यानि अत्यंत विस्मृति। सहसाकार- जिससे वापस आना, ~~रोक~~ रुकना शक्य न हो वह अतिप्रवृत्त योग, ऐसे अतिप्रवृत्ति वाले योग से न रुकना। इन दो आगार सिवाय वोसिराता हूँ।

पदविग्रह तो समास वाले पदों का ही होता है अतः सभी जगह नहीं होता, कहीं-कहीं ही होता है। यह भी यथासंभव कहा गया। ~~च~~ पात्यना- प्रत्यवस्थान तो निर्युक्ति-कार स्वयं कहेंगे।

उत्त. सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति से पदविग्रह वि. कहते हैं-

गा. 1589 अशन- खाखरे, भात वि.। पान- द्राक्षपान वि. खादिम- फलादि। स्वादिम- गुड़, तांबूल, सुपारी वि.। ये ५ प्र. का आहार है।

गा. 1590 अशन= आशु क्षुधां शमयति इति, जल्दी से भूख मिटाने वाला।

पान= इन्द्रियादिलक्षणानां प्राणानां उपग्रहे यद् वर्तते, इंद्रिय वि. प्राणों के उपकार को जो करे।

खादिम= ख यानि आकाश, वह मुख का विवर। तस्मिन् याति इति, मुख के विवर में रहने वाला।

स्वादिम= स्वादयति रसादिगुणान् संयमगुणान् वा यस्मात्, जिससे (भोक्ता= खाने वाला) रसादि गुणों ~~का संयम गुणों का~~ का आस्वाद करे अथवा जिससे (भोक्ता) संयमगुणों का स्वाद यानि भक्षण करे अर्थात् नाश करे।

प्र. यह निरुक्त अर्थ या अन्वर्थ सही है क्योंकि ऐसा कहीं देखा नहीं गया।

उ. यह अन्वर्थ सही ही है क्योंकि 1. विचित्र ऐसे निरुक्त के पाठ मिलते हैं। 2. भ्रमति च रौति च भ्रमरः इति, ऐसा प्रयोग दिखने से।

प्रत्यवस्थान

अत: पदार्थ कहा। पद विग्रह समास वाले पदों का होने से नहीं कहा। अब चालना-

गा.1591 (पूर्वपक्ष-) आपने ऊपर जो पदार्थ (अन्वर्थ) कहा, उस परिभाषा से तो चारों प्र. का आहार अशन होगा, चारों ही आहार पान भी होगा, चारों ही खादिम और स्वादिम भी होंगे क्योंकि जैसे भात वि. अशन भूख का शमन करता है, वैसे ही द्राक्ष-क्षीरपान वि. पान भी भूख का शमन करते हैं, वैसे ही फलादि खादिम और तांबूलादि स्वादिम भी भूख का शमन करते हैं। तथा जैसे पान प्राणों का उपकार करता है, वैसे ही अशनादि भी उपकार करते हैं। तथा चारों ही आहार मुख के विवर में आते हैं और चारों ही आहार का आस्वाद लिया जाता है। इसलिए कोई भेद नहीं होने से ये ५ भेद अयुक्त हैं?

गा.1592 ~~वैसे~~ (उत्तरपक्ष) वैसे तो चारों में कोई भेद नहीं है किंतु रूढि से ऐसे भेद चल रहे हैं। और इस कल्पना का प्रयोजन संयम में उपकार है क्योंकि यदि ये भेद नहीं मानते, पूरा आहार एक ही मानते तो जिसे मात्र पानी वापरना है, शेष ३ का त्याग करना है, वह भी पच्च. नहीं लेता क्योंकि यदि सवहार का पच्च लेगा तो पानी का भी त्याग हो जाएगा। अत: ऐसे पानी वि. की छूट लेकर शेष का त्याग करने की रूप संयम में उपकार, ये ५ भेद मानने से होता है।

~~(पूर्वपक्ष-) इसमें हमें क्या दोष है? शेष आहार के भेद का त्याग होता ही है क्योंकि वह न्याय से घटता है~~

(उत्तरपक्ष) शेष आहार का त्याग तो होता ही है क्योंकि वह न्याय से घटता है। बुद्धि पूर्वक यह त्याग घटता है। यह न्याय है। यह त्याग अशनादि अत्यग मानो तो ही घटता है। इसलिए अशनादि अत्यग रखे हैं।

(पूर्वपक्ष) अशनादि भेद करने की जगह एक मानो तो भी यह त्याग घटता है। ज्ञा-उन भेदों के त्याग से गा.

~~(उत्तरपक्ष~~ (उत्तरपक्ष-) यह घटता है किंतु यह जानना दुष्कर हो जाएगा। इसी आहार का एक देश छोड़ा, इसी का एक देश नहीं; जैसे कुक्कुटी का आधा ~~अंडा~~ शरीर पकाते

हैं और आधा शरीर अंडे के लिए रखते हैं। तथा ऐसे अपरिणत जीवों को श्रद्धा नहीं होती है। ऐसे भेद की निरूपणा में सुखपूर्वक जान सकते हैं और सुख पूर्वक श्रद्धा करत सकते हैं। इसलिए भेद रखा है।

अव. प. शिष्य ने मन में उप. के आहार के पच्च. को धारा किंतु गुरु को कहते समय 4प. का मुँह से निकल गया। गुरु ने भी वैसा ही पच्च. दिया तो इसमें कौन प्रमाण है? उ. शिष्य के मन में रहा भाव। इसी बात को कहते हैं:-

गा. 1594 उप. के आहार के पच्च. की विचारणा में '4प.' इस प. शब्द निकल जाने पर पच्चाखान करने वाले के मन में रहा प्रथम भाव है, वह प्रमाण है। शिष्य से प्रमाद के कारण ऐसा वचन नहीं निकला है किंतु वह अधिकतर संयम-योग करने के भावों में होने से ऐसा होता है (अर्थात् मैं उप. के आहार का त्याग करूँगा तो स्वाध्याय, वैयावच्च वि. बराबर करूँगा, वि.। ऐसे अधिकतर योग की विचारणा)।

इस पद से बीच में रही सूक्ष्म विचारणाओं की प्रमाणता का निषेध कहा (अर्थात् गुरु पच्च. दे तब शिष्य के मन में चलती सूक्ष्म विचारणा - तिविहार करूँ या चोविहार वि. की प्रमाणता का निषेध किया)। जहाँ प्रथम विचार ही प्रमाण है। और यहाँ व्यवहार नय का विषय होने से यह अधिकृत है।

अत शिष्य और सा. का वचन यानी व्यंजन की चलना प्रमाण क्योंकि वह मात्र शब्द है, मन में भाव तो कुछ अलग है।

अव. यह पच्च. निर्जरा का प्रधान कारण है इसलिए विधि पूर्वक पालना चाहिए और

गा. 1595 स्पृष्ट = पच्च. ग्रहण करते समय विधि पूर्वक ग्रहण किया हो।
पालित = बार-बार उपयोग के जागरण से रक्षा की हो।
शोभित = गुर्वादि को देने बाद शेष भोजन बापरने से।

तीरित= कालावधि पूर्ण होने पर भी कुछ काल रुकना।
कीर्तित= भोजन के समय 'मैंने यह पच्च. लिया था, वह पूर्ण हो गया, अब मैं बापरता हूँ' ऐसा बोलना।
आराधित= इन सभी प्रकारों से निष्ठा को प्राप्त।
ऐसा पच्च. ही जिनाज्ञा पालन से और अप्रमाद से बहुत कर्म क्षय का कारण है इसलिए ऐसे पच्च. में यत्न करना चाहिए।

अब. अनन्तर-परंपर से प्रत्याख्यान के गुणों को कहते हैं-

गा.1596 पच्च. करने पर आश्रव द्वार बंध हो जाते हैं क्योंकि उनके विषयों में प्रवृत्ति नहीं होती। उससे विषयों की तृष्णा निवृत्त होती है।

गा.1597 विषय तृष्णा की निवृत्ति से मनुष्यों को अतुल अर्थात् जिसके समान अन्य कोई नहीं है, ऐसा उपशम-मध्यस्थ परिणाम होता है। ऐसे अतुल उपशम से शुद्ध यानि निष्कलंक पच्च. होता है।

गा.1598 प्रत्याख्यान से चारित्र धर्म प्रगट होता है। चारित्रधर्म से कर्म निर्जरा होती है। कर्मक्षय से अपूर्वकरण, अपूर्वकरण से श्रेणि के क्रम द्वारा केवलज्ञान होता है। केवलज्ञान से भवोपग्राही कर्मक्षय से मोक्ष होता है। ऐसे यह पच्च. सकलकल्याण का एक कारण रूप होने से यत्न करना चाहिए।

अब. पच्च. के आगार-

गा.1599-1600 नवकारसी पोरसी पुरिमड्ढ एकासन एकठाण आयंबिल उपवास चरम अभिग्रह विगइ पान

2 6 7 8 7 8 5 4 5 8|9 6

सभी पच्च. के मिलाकर 9 आगार होते हैं।

अधिकतम

गा.160] भावार्थ- नवकारसी के पच्च. में 2 ही आगार होता है। आगार यानि पच्च. के अपवाद के हेतु। इसका सूत्र आगार सहित कहा गया (देखें सूत्र Pg.164 पर)।

पोरसी पच्च. में 6 आगार होते हैं। इसका सूत्र-

सूत्र पोरिसिं पच्चक्खाति उग्गए सूरे चउव्विहंपि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अण्णत्थऽणाभोगेणं सहसाकारेणं पच्छन्नकालेणं दिसामोहेणं साधुवयणेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ।

अनाभोग-सहसाकार पूर्ववत् (Pg.165)।

प्रच्छन्नकाल = रजकण, रेणु या पर्वत के कारण दिशा ढँक गई हो अथवा बादल से सूर्य दिखता न हो तब पोरसी का समय हो गया मानकर पार लिया हो। बाद में खबर पड़ने पर तुरंत वापरना रोक दे तो भंग नहीं। यदि वापरना चालू रखे तो भंग।

दिशा मोह = कोई दिशामोह से अभी उगे हुए सूर्य को देखकर सूर्यास्त का समय समझकर वापरने लगे। फिर खबर पड़ने पर रुक जाए।

साधुवचन = साधु 6 घड़ी पोरसी बाकी में कहे पोरसी पूर्ण हुई तो वापरने वाला साधु पोरसी पच्च. पार ले। फिर कोई छाया को नापे तो खबर पड़ने पर कहे कि पोरसी अभी नहीं आई है। तब वापरना रोक दे।

सर्वसमाधिप्रत्ययागार = किसी ने पोरसी पच्च. किया और पच्च. आने के पहले उसे या अन्य जल्दी मृत्यु हो, ऐसा दुःख उत्पन्न हो। तब उसके शमन के लिए पच्च. पारे और औषध दे।

यहाँ विवेक- थोड़ा वापरा और दुःख शांत हो गया अथवा जिसके लिए वह पच्च. पार रहा था, उस ग्लान की मृत्यु हो गई हो तो शेष भोजन वापरना रोक दे।

पुरिमार्द्ध यानि पहले २ पहर रूप कालावधि वाला पच्च.। इसमें ७ आगार होते हैं।६ आगार तो कहे गए। ७वां आगार महत्तरागार सर्वोत्तरगुण पच्च. में सागार पच्च. के अधिकार में कहा (Pg. 157 पर)।

एकासने में ८ आगार। एकाशन यानि एक बार बैठकर दूसरे को हिलाए बिना वापरना। सूत्र –

सूत्र एक्कासणं... सण्णत्थऽणाभोगेणं सहसाकारेणं सागरियागारेणं आउंटणपसारेणेणं गुरु अब्भुट्ठाणेणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरति।

सागरियागारेणं = वापरना चालू किया और वहाँ कोई गृहस्थ आ जाए। यदि वह वापस चले जाने वाला हो तो वापरना बंद कर जाने की राह देखे। यदि वहीं रहने वाला हो तो स्वाध्याय का व्याघात न हो इसलिए उठकर अन्य जगह जाकर वापरे।
आकुंचन-प्रसारण = हाथ, पैर, सिर वि. हिलाए अथवा संकोचे-प्रसारे तो भी पच्च. भंग नहीं होता।
गुरु अभ्युत्थान = वापरने बैठे हो तब अभ्युत्थान के योग्य आचार्य या प्राघूर्णक आए तो उनका अभ्युत्थान करना।
पारिष्ठापनिका = वापरने के बाद कोई परठने योग्य द्रव्य हो तो उसे दूसरी बार भी वापरना कल्पता है।
शेष आगार पूर्ववत्।

गा.1602 एकस्थान यानि जैसे अंगोपांग रखे हो वैसे ही रहकर वापरना चाहिए। 'आकुंचन-प्रसारण सिवाय शेष ७ एकासने की तरह।

आयंबिल के ४ आगार, बहुत वक्तव्य होने से आगे कहेंगे। (Pg. 172 Upar)

उपवास के लिए ५ आगार - अनाभोग, सहसाकार, पारिष्ठापनिका, महत्तरागार, सर्वसमाधि
यदि तिविहार उपवास हो तो पारिष्ठापनिका बापरना कल्पता है। यदि चोविहार उपवास हो और पानी बढ़ा न हो तो नहीं कल्पता। यदि पानी भी बढ़ा हो तो बापरना कल्पता है।

यदि पोरसी, पुरिमड्ढ वि. पच्च. तिविहार के लिए हो तो पानी के ६ आगार -
कृतलेप = चिकास वाले खजूर वि. द्रव्यों के भाजन का धोवन पानी
अकृतलेप = कांजी वि. पानी।
स्वच्छ = ३ उकाला वाला पानी।
बहल = तिल, चावल वि. का धोवन।
ससिक्थ = कण सहित पानी।
असिक्थ = कण रहित पानी।

चरिम पच्च. २ प्र- दिवसचरिम, भवचरिम। दिवसचरिम के ५ आगार - अन्नत्थणाभोगेणं, सहसाकारेणं, महत्तराकारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं। भवचरिम यावज्जीव के लिए होता है, उसके भी ये ५ ही आगार।

गा. 1603 अभिग्रह में ५ और ५ आगार। अपावरण अभिग्रह में ५, शेष में ५। नीवि में ८ या ७ आगार।
भावार्थ - कोई एक भी वस्त्र न पहनने का अभिग्रह ले तो ५ आगार - अणाभोग, सहसागार, चोलपट्टकागार, महत्तरागार, सर्वसमाधि। उपाश्रय में आते-जाते साधुओं के दांडे पुमार्जकर लेने-देने वि. अभिग्रह में ५ आगार।

निवि में 8 या 9 आगार। यहाँ विगइ -

विगइ 10 प्र. - दूध, दही, मक्खन, घी, तेल, गुड़, शहद, शराब, मांस, पक्वान्न। दूध 5 प्र. - गाय-भैंस-ऊंट-बकरी-भेड़ का। दही- मक्खन- घी 4 प्र.- ऊंट सिवाय 4। क्योंकि ऊंट के दूध का दही नहीं बनता इसलिए मक्खन और घी भी नहीं बनता। तेल 4 प्र.- तिल, अलसी, कुसुंभ, सरसु का। ये 4 तेल विगइ है, शेष तेल विगइ नहीं है किंतु लेपकृत है। शराब 2 प्र. - काष्ठ से बनी (अमुक वृक्ष की जड़ से बनी) और गन्ना-द्राक्ष वि. से बनी। गुड़ 2 प्र.- द्रव, पिंड। शहद 3 प्र. - मधुमक्खी का, कौन्तिक (जीव विशेष) का, भ्रमर का। मांस 3 प्र. - जलचर, स्थलचर, खेचर अथवा चर्म, मांस, शोणित।

कड़ाविगइ (भक्तगाहिम)- घी वि. से भरी कढ़ाई में चड़-चड़ आवाज करते हुए खाद्य वस्तु को पकाते हैं। फिर उसी झाग वाली कढ़ाई में दूसरी और तीसरी बार भी पकाते हैं। 3 बार तक की वस्तु विगई, शेष नहीं। शेष 4थी वि. बार पकाई हुई वस्तु जोग सिवाय की निवि में खपती है। यदि एक ही पुड़ले से पूरी कढ़ाई भरी हो तो दूसरा घान भी कल्पता है। नीविधाती वस्तु लेपकृत होती है। यह आचार्य परंपरा से आई हुई सामाचारी है।

गा.1604 कब 8 और कब 9 होते हैं?- छानने के बाद जो मक्खन, कड़ा विगइ (पक्वान्न), मांस, घी, गुड़ इतनी विगई कठिन हो तो 9 आगार। यदि ये विगइ द्रव हो अथवा इनसे अन्य कोई भी विगइ हो तो 8 आगार। इसमें ~~~ 'उत्क्षिप्तविवेक' नहीं होता।

यहाँ सूत्र -

सूत्र ~~णिव्वियतियं पच्चक्खाति... अन्नत्थऽणाभोगेणं सहसाकारेणं लेवालेवेणं गिहत्थसंसट्ठेणं उक्खित्तविवेगेणं पडुच्चमक्खिएणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरति।~~

यह सूत्र प्रायः स्पष्ट ही है। विशेष तो 'पंचेव य खीराइं' वि. गंथ से भाष्यकार द्वारा स्थापित क्रम की प्रमाणता से आगे कहेंगे। अभी उनके द्वारा बताए हुए क्रम से ही आयंबिल की व्याख्या (देखें Pg. 171 पर First line) -

गा. 1605 'आयामाम्ल' गुण निष्पन्न नाम है। आयाम = अवशायन, श्रीसाधण। आम्ल = चौथा रस (खट्टा रस)। इन से जो हो वह आयामाम्ल। (रूढ्यर्थ से बिगड़ और खट्टे रस का त्याग जिसमें हो)। ऐसे आयामाम्ल उपाधि के भेद से 3 प्र. - भात, उड़द, सत्तु। तीनों के 3-3 प्र. - जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट।

गा. 1606 द्रव्य-रस-गुण की अपेक्षा से आयंबिल के जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट भेद होते हैं। इनमें आयंबिल के प्रायोग्य कहना। 'मैं आयंबिल की ~~वस्तु का त्याग~~ पच्च. करता हूँ' ऐसा पच्च. लेकर दही के साथ खाने वाले को दोष नहीं है। ^ बु. प्राणातिपात का त्याग करने वाला प्राणातिपात नहीं करता वैसे, यह उसकी छलना है। इसमें इ वक्र पुरुष विशेष जानना।

गा. 1607 लोक, वेद, समय, अज्ञान, ग्लानत्व की अपेक्षा से इ वक्र पुरुष जानना। विस्तारार्थ वृद्ध संप्रदाय से जानना।

टीप्पणक वृद्ध संप्रदाय - आचाम्ल यानि शालिकूरादि उत्कृष्ट द्रव्य। इन द्रव्यों से आयंबिल होता है इसलिए उपचार से इन्हें भी आचाम्ल कहते हैं। उत्कृष्ट होने से प्रायः इन द्रव्यों का ग्रहण नहीं ही किया जाता इसलिए कहा - 'आयंबिल प्रायोग्य'। आयंबिल प्रायोग्य तन्दुलकणिकादि द्रव्य होते हैं। ये निरपवाद ग्रहण किए जाने से प्रायोग्य कहलाते हैं।

ऐसा आचाम्ल पहले भात-उड़द-सत्तु के भेद से 3 प्र. के कहे गए। इसमें ओदन विषयक आचाम्ल और आचाम्लप्रायोग्य बताते हैं - लोक में प्रसिद्ध कलम-शालि वि. ~~3~~ प्र. कूर विशेष अथवा चावल नहीं किंतु जिन्हें-जिन्हें लोक में कूर कहते हैं, वे सभी धान आचाम्ल हैं। आचाम्ल प्रायोग्य - तंदुलकणिका (कणकी चावल), कुंडक (~~कोई~~ तंदुलकणिका का ही कोई विशेष भेद है, ऐसा लगता है), आटा, पिहुक (पोहे), आटे से बनी पूड़ी, भरोत्थ (लोक में प्रसिद्ध, गीले आटे का पिंड (रोटी)), पंडक (खाखरे) इन्हें गुरु आचाम्ल प्रायोग्य कहते हैं क्योंकि अन्य द्रव्य उत्कृष्ट होते हैं। ~~तत्त्व तो~~

केवली जाने।

हरिभद्रीय वृत्ति — अब उड़द के आचाम्ल और आचाम्लप्रायोग्य कहते हैं → उड़द को पहले पानी से धोते हैं, फिर यंत्र में पीसते हैं। पीसना त्रि.प्र. - द्वारीक, मध्यम, स्थूल। ये तीनों आचाम्ल आचाम्ल प्रयोग्य - उसके फोतरे (तुष) से मिश्र कण और कोरड़ी उड़द।

अब सत्तु के आचाम्ल और आचाम्लप्रायोग्य → सत्तु त्रिधान से बनता है - यव, गेहूँ, चावल। ये तीनों आचाम्ल। आचाम्ल प्रयोग्य गेहूँ को भूंजकर बनी हुई वस्तु (खीचा दूधरी वि.), पोहे, लाय (चावल की वस्तु विशेष), यवभूंजिका, निश्चार (?) और कणकी वि. जिन्हें यंत्र में पीसना शक्य नहीं है।

टीप्पणक — गोधूमभूंजिका और यवभूंजिका यानि गेहूँ और जौ की धाणी।
शेष प्रत्याख्यान निर्युक्ति की समाप्ति तक सुगम है।

श्रीमद् अभयदेवसूरि के चरण कमल के भ्रमर समान श्री हेमचंद्रसूरि विरचित आवश्यक वृत्ति का प्रदेशत्याख्यानक समाप्त।
इस प्रकार गुरुजन के मूल से जो अर्थ समूह स्वबुद्धि द्वारा जाना, उसे यहाँ आत्म-स्मृति रूप उपादान हेतु से यह रचा है। मेरे विषय में जहाँ कुछ दोष सहित हो, वहाँ गुरु को तोष करने वाले मुनीन्द्रों द्वारा सुधारने योग्य है। 1
क्योंकि कर्म के वश ऐसे किस ग्रन्थार्थ को यहाँ मोह नहीं होता? मेरे जैसे सद्बुद्धि से रहित को विशेष से मोह होता है। 2
(ग्रन्थाग्र ५६००)

हरिभद्रीय वृत्ति — ये त्रि.प्र. के आयंबिल त्रि.प्र. से जानना - उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य। द्रव्य से कलम-शालि-कूर उत्कृष्ट है अथवा जिसे जो पथ्य है अथवा रुचता है, वह उत्कृष्ट।

रात्यक अथवा श्यामाक जघन्य। शेष मध्यम।
(द्रव्य की अपेक्षा उप. कहे। अब रस की अपेक्षा, देखें गा. 1606 Pg. 173-) रसों से
में जो कत्थम-शालि-कूर हैं, वे उत्कृष्ट हैं।
(गुण यानि निर्जरा गुण की अपेक्षा-) जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट।
(यह सामान्य से कहा। अब तीनों के Mix कर भांगे-)

1. कत्थम-शालि-कूर उत्कृष्ट द्रव्य + खट्टा रस (उसका ही ओसामण) उत्कृष्ट = जघन्य निर्जरा
2. " " + अन्य ओसामण (मध्यम रस) = मध्यम गुण
3. " + पानी (जघन्य रस) = " "

1. मध्यम चावल द्रव्य + कांजी (उत्कृष्ट रस) = " "
2. " + ओसामण (मध्यम) = "
3. " + पानी = "

1. रात्रकादि जघन्य द्रव्य + कांजी = "
2. " + ओसामण = "
3. " + पानी = "

ऐसे अन्य संयोग भी जानना।

छलना - एक साधु ने आयंबिल का पच्च. किया। x गोचरी में नीरस चावल ग्रहण किए x फिर एक घर में खीर की विनंती करने पर खीर लेकर आया और गुरु को दिखाकर बताने लगा x गुरु - आज तो आयंबिल का पच्च. था x शिष्य - हाँ x गुरु - तो खीर क्यों खाता है? x शिष्य - जैसे प्राणातिपात के पच्च. से प्राणातिपात नहीं करते, वैसे आयंबिल के पच्च. से आयंबिल का त्याग करते हैं। यह छलना है।
इसका परिहार - पच्च. भोजन और भोजन की निवृत्ति विषयक होता है। भोजन विषयक पच्च. यानि आयंबिल सिवाय अन्य भोजन का त्याग, मात्र आयंबिल का वापरना। तथा भोजन की निवृत्ति विषयक पच्च. यानि चार प्र. के आहार वि. का त्याग।

लोक में पच्च. का ऐसा ही अर्थ है। इसलिए यह घटना निरर्थक है।

पाँच कुंडग (5 वक्र पुरुष) – लोक, वेद, समय, अज्ञान और ग्लान की अपेक्षा।

1. लोक – एक साधु ने आयंबिल का पच्च. किया x भिक्षा कोई संखड़ी का द्रव्य या अच्छा द्रव्य मिला x गुरु को बताया x गुरु- तुझे तो आयंबिल है x शिष्य- मैंने बहुत लौकिक शास्त्र देखे किंतु कहीं आयंबिल शब्द नहीं है, इसलिए आप कहाँ से लाए पता नहीं?
2. वेद – गुरु के पूछने पर कहे – चारों वेद सांगोपांग देखे, कहीं भी आयंबिल शब्द नहीं है गा.
3. समय – चरक, ~~चिक्कि~~ चीरिक (रास्ते में पड़े कपड़े के टुकड़े लेकर पहनने वाले भिक्षु), वैद्य वि. शास्त्रों में भी आयंबिल शब्द... ।
4. अज्ञान – कोई अज्ञान से कहे – मुझे पता नहीं कि आयंबिल कैसा होता है? मुझे लगा खीर भी खाते होंगे, मिच्छामि दुक्कडं, अब मैं नहीं लूँगा।
5. ग्लान – 'मुझे पेर दुःखता है' वि. रोग कारण कहे कि मैं आयंबिल करने में समर्थ नहीं हूँ।

गा.

आयंबिल के 8 आगार –

सूत्र अण्णत्थणाभोगेणं सहस्सागारेणं लेवालेवेणं उक्खित्तविवेगेणं गिहत्थसंसट्ठेणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरति।

अनाभोग, सहसाकार पूर्ववत्।

लेपालेप = पात्र में पहले लेपकृत् वस्तु ग्रहण की हो, फिर पात्र को बराबर उंगली से साफ कर दिया हो। अब उसी पात्र में लाए तो भी आयंबिल में कल्पता है।

उक्षिप्त विवेक = यदि आयंबिल के भोजन में कोई विगइ गिर गई हो, वह कठिन हो, घी ढे न गिरते हो तो वह निकालकर शेष आयंबिल में कल्पता है। ऐसे ही आयंबिल के अप्रायोग्य द्रव्य में भी जानना।

गृहस्थसंसृष्ट = गृहस्थ के चम्मच वि. गोरस वि. से खरड़े हुए हो और उससे आयंबि की वस्तु ओराए तो भी कल्पता है। यदि गोरस बहुत ज्यादा हो तो नहीं कल्पता शेष आगार पूर्ववत्।

अव. अतिगंभीर बुद्धि वाले भाष्यकार द्वारा स्थापित क्रम में आयामाम्ल की व्याख्या हुई उसी क्रम में निवि के अधिकार की शेष वक्तव्यता —

गा.1608-9 वैसे ही ८ पु. के दूध, ५ पु. के दही-मक्खन-घी, ५ पु. के तेल, २ पु. की शराब, २ पु. गुड़, ३ पु. के शहद और मांस जानना। चट्-चट् आवाज करते हुए पकाया जाने वाला अवगाहिम। इन सबका संसृष्ट क्रमशः कहूँगा।

अव. (निवि के आगार का सूत्र Pg.172 पर)। आगारों की व्याख्या करते हैं। अनाभोग सहसाकार पूर्ववत्। लेपालेप आयंबिलवत्। गृहस्थ संसृष्ट में बहुत वक्तव्यता होने से गाथा द्वारा कहते हैं —

गा.1610-11 गृहस्थसंसृष्ट की विधि- साधु को यदि दूध से मिश्र करंबा रूप भात मिले तब करंबे में भात से ऊपर ज्यादा में ज्यादा चअंगुल दूध हो तो वह दूध नीवियाता होता है और निवि में कल्पता है। यदि चअंगुल से ज्यादा दूध हो तो बिगइ स्वरूप होता है। ऐसे ही दही और शराब में भी जानना। कुछ देशों में शराब के साथ भात और पक्वान्न मिश्र ~~होते हैं~~ किए जाते हैं। द्रव गुड़, तेल और घी से चावल मिश्रित हो तो एक अंगुल ऊपर तक होने पर नीवियाता एक अंगुल से ऊपर हो तो बिगइ। शहद और मांस का रस (चर्बी) ½ अंगुल तक हो तो नीवियाता। कठिन गुड़, कठिन मांस और कठिन मक्खन के पीलू वृक्ष के मोहर जितने टुकड़े से मिश्रित द्रव्य नीवियाता। इस प्रमाण के बहुत सारे टुकड़े हो तो भी चलता है किंतु इससे बड़ा एक भी टुकड़ा हो तो नहीं कल्पता।

उत्क्षिप्त विवेक = आयंबिलवत् | जिन्हें निकाल सके, ऐसी बिगइयों को दूर करने पर भी कल्प्य | शेष जिन्हें दूर न कर सके (अंजुवा बिगइ) उसमें यह आगार नहीं है।
प्रतीत्यभ्रक्षित = (प्रतीत्य यानि एकदम लुखे द्रव्य की अपेक्षा, भ्रक्षित यानि कुछ स्नेह वाला किया हो) शेरी वि. पर उंगली से तेल या घी लगाया हो तो कल्प्य | यदि धारदे से, थोड़ा भी चोपड़े तो अकल्प्य | (स्वाद न आना चाहिए)

अव. पारिष्ठापनिकागार = ये आगार एकासना-एकलठाण वि. सबमें होने से इसकी विशेष प्ररूपणा करते हैं अथवा शंकाकार आगारों का वर्णन सुनते हुए जैसे नींद से उठा हो, वैसे पूछता है - आपने एकासन-एगलठाण-आयंबिल-उपवास-छट्ठ-अट्ठम निवि में पारिट्ठावणियागार कहा है | तो वह कैसे साधु को देना चाहिए या न देना चाहिए ? उ. -

गा. 1612 पारिष्ठापनिका को वापरने योग्य साधु 2प्र. - आयंबिल वाले और आयंबिल रहित | आयंबिलरहित = एकासने-एगलठाण - उपवास - छट्ठ - अट्ठम - निवि तक के | दसभक्त वि. (५उपवास और उससे ऊपर) को मींडली की बढ़ी हुई पारिष्ठापनिका देना नहीं कल्पती उन्हें पेया (थोड़े चावल के साथ उकाला हुआ दूध) या अ उष्ण अंजुवा देना चाहिए) क्योंकि इन साधु में देवता का वास भी हो सकता है।

प्र. एक आयंबिल वाला और एक उपवास वाला, दोनों में से किसे पहले देना ? उ. उपवास वाले को | उपवास 2प्र. - वाच्य, वृद्ध; वाले को देना | वाले 2प्र. - सहिष्णु, असहिष्णु; असहु को देना | असहु 2प्र. - गोचरी जाने वाला, न जाने वाले; जाने वाले को देना | गोचरी जाने वाला 2प्र. - वास्तव्य, प्राघूर्णक; प्राघूर्णक को देना |
ऐसे 1. वाच्य, असहु, गोचरी जाने वाला, प्राघूर्णक ऐसे उपवासी को पहले देना | गा.
न हो तो 2. " " " वास्तव्य " |
" 3. " " गोचरी न जानेवाला; प्राघूर्णक " |
" 4. " " " वास्तव्य " |

ऐसे 16 भांगे बनाना –

1.	बाल	असहु	सहिंडक	प्राघूर्णक	9.	वृद्ध	असहु	सहिंडक	प्राघूर्णक
2.	✓	✓	✓	वास्तव्य	10.	✓	✓	✓	वास्तव्य
3.	✓	✓	हिंडक	प्रा.	11.	✓	✓	हिंडक	प्रा.
4.	✓	✓	✓	वा.	12.	✓	✓	✓	वा.
5.	✓	सहु	सहिंडक	प्रा.	13.	✓	सहु	सहिंडक	प्रा.
6.	✓	✓	✓	वा.	14.	✓	✓	✓	वा.
7.	✓	✓	हिंडक	प्रा.	15.	✓	✓	हिंडक	प्रा.
8.	✓	✓	✓	वा.	16.	✓	✓	✓	वा.

इसमें प्रथम भांगे वाले को पहले देना। न हो तो दूसरा। न हो तो तीसरा... ।
यदि पारिष्ठापनिका ज्यादा प्रमाण में हो तो सबको देना।
यह आयंबिल-उपवास में देखा। ऐसे आयंबिल-छट्ठ, आयंबिल-अट्ठम, आयंबिल-निवि, आयंबिल-एकासन, आयंबिल-एगलठाण प्रत्येक के 16-16 भांगे जानना। कुल 96 भांगे हुए। इनमें आयंबिल-निवि/एकासन/एगलठाण में आयंबिल वाले को पहले देना।
एक को उपवास, एक को छट्ठ है तो छट्ठ वाले को देना, वैसे ही 16 भांगे। ऐसे ही उपवास-अट्ठम, एकासन-निवि, एकलठाण-निवि वि. 16-16 भांगे जानना।

अब, ये पारिष्ठापनिका भी यदि विधि पूर्वक ग्रहण की हो और विधि पूर्वक वापरने के बाद बढ़ी हो तो देना। उसमें –

गा. 1613 विधिगृहीत पानि त्योम बिना गोचरी लाए हो, फिर मांडली में करछेद (जो वस्तु वापर रहे हैं, वह पूर्ण न हो तबतक दूसरी वस्तु न वापरे), प्रतरछेद (एक-एक प्रकार वापरे), अथवा सिंहभोजन (एक side से चालू कर गोलाकार में वापरे) वि. विधि से वापरे। ऐसी पारिष्ठापनिका के लिए जब गुरु कहे – इस पारिष्ठापनिका को तू इच्छाकार से वापर।

तब वह वंदन कर, अनुज्ञा लेकर वापरे।

गा.1614 यहाँ चतुर्भंगी — १. ग्रहण भुक्त

1. विधि विधि
2. " अविधि
3. अविधि विधि
4. " अविधि (ex. दूध में शक्कर डालना वि)

प्रथम भांगा - साधु गोचरी गए हो, लाभ बिना वाह्य संयोजना के दोषों का परिहार करते हुए भक्त-पान ग्रहण किए। फिर मांडली में पतरछेद वि. विधि से वापरे। ऐसा आहार पारिष्ठापनिका पूर्व में बताए भांगे बातों को वापरना कल्पता है।

द्वितीय भांगा - ग्रहण विधि से करे किंतु अविधि से वापरे। जैसे काक भक्षित (कौआ बुन-बीन बुनकर खाता है, वैसे स्वाद के लिए अच्छी-अच्छी वस्तु बीनकर खाए अथवा टोलते-वी टोलते खाए अथवा कौए की तरह आसपास देखते-देखते खाए), सियार भक्षित (~~खाए~~ थोड़ा यहाँ से, थोड़ा वहाँ से वापरे, ऐसे स्वाद के लिए अलग-अलग चीजे वापरे) वि. ऐसे यदि गोचरी बढ़े तो उसे परठे किंतु उपवासी वि. को नहीं कल्पता क्योंकि इसमें अच्छी-अच्छी वस्तु तो खत्म हो जाती है, जो तुच्छ हो वह बचती है, इसमें इत्वी वि. दोष की संभावना है। ऐसे बढ़ी हुई गोचरी को जो देता है और जो वापरता है, उन दोनों को गच्छ से बाहर निकालते हैं। अथवा वापस न करे, ऐसा बोले तो उन्हें पंचकल्याणक प्रायश्चित्त दिया जाता है।

तृतीय भांगा - गोचरी जाने वाला साधु अच्छी-अच्छी वस्तु पात्रे में अलग-अलग जगह छुपाकर लाए कि यह मुझे वापरना, यह अविधि ग्रहण। ऐसे लाई हुई गोचरी को रत्नाधि मांडली में एकरस कर सबको दे, विधि पूर्वक वापरे। ऐसे बढ़ी हुई गोचरी भले अविधि से ग्रहण की हो तो भी विधि भुक्त होने से उपवासी वि. को देना कल्पती है।

चतुर्थ भांगा - इस भांगे में बढ़ी गोचरी भी उपवासी वि. को देना नहीं कल्पती। देने में दोष दूसरे भांगे की तरह।

आव पच्च. चूर्ण। (भा. 243 Pg. 90)

अव. A. प्रत्याख्यान द्वार पूर्ण (द्वार गा. 1558 पृ.88) | B. प्रत्याख्याता द्वार-

गा. 1615 प्रत्याख्याता गुरु हैं। ऐसे गुरु को प्रत्याख्याता कहने पर प्रत्याख्यान लेने वाले शिष्य का भी उल्लेख जानना क्योंकि पच्च. गुरु-शिष्य बिना नहीं होता।
कुछ मु. 'पच्चक्खारण' की जगह 'पच्चक्खाणेण' शब्द कहते हैं अर्थात् द्वार गा. 1558 में दिए 'प्रत्याख्यान' शब्द से प्रत्याख्याता का उल्लेख समझ लेना ~~क्योंकि~~ परंतु यह योग्य नहीं है क्योंकि निर्युक्तिकार ने 'प्रत्याख्याता' शब्द का साक्षात् उपन्यास किया है और प्रत्याख्यान शब्द मानने पर शिष्य के उल्लेख की भी अनुपपत्ति होगी।
यहाँ ज्ञाता और अज्ञात गुरु-शिष्य की चतुर्भंगी और उसमें गाय का दृष्टांत है।

गा. 1616 (गुरु ज्ञाता होना चाहिए →) सर्व मूलगुण-देशमूल गुण, सर्व उत्तरगुण, देश उत्तरगुण और श्रद्धा वि. 69 प्र. की शुद्धि विषयक ~~शुद्ध-अशुद्ध~~ प्रत्याख्यान विधि के जानकार गुरु ~~होने~~ होते हैं।
~~चाहिए~~ अर्थात् ~~को~~ गुरु ये सब पच्च. के भेद वि. जानते हैं।

गा. 1617 (शिष्य कैसा होना चाहिए ?-) वंदन-आगार वि. विधि को जानने वाला, पच्च. के उपयोग में तत्पर (क्योंकि पच्च. उपयोग की प्रधानता वाला है), अशठभाव यानि शुद्ध चित्त वाला, संविग्न यानि मोक्षार्थी, स्थिर प्रतिज्ञा वाला यानि कहे हुए से अन्यथा नहीं करने वाला शिष्य पच्च. लेने वाला होता है।

गा. 1618 ऐसे प्रत्याख्याता (गुरु, पच्च. देने वाले) और प्रत्याख्यापयिता (शिष्य-पच्च. लेने वाले) में ज्ञाता-अज्ञाता की चतुर्भंगी-

	गुरु	शिष्य
1.	ज्ञाता	ज्ञाता
2.	"	अज्ञाता
3.	अज्ञाता	ज्ञाता
4.	"	अज्ञाता

1. दोनों ज्ञाता होने से प्रथम भांगे में शुद्ध पच्च.।
2. यदि ज्ञाता गुरु अज्ञात शिष्य को बताकर पच्च. दे तो शुद्ध, अन्यथा नहीं।
3. अज्ञाता ~~xxx~~ - ज्ञाता को पच्च. दे तो अशुद्ध। यदि प्रभु यानि गुरु या वडील ने कहा हो कि तू इसे पच्च. दे वि. तो गुरु संदिष्ट होने से शुद्ध पच्च.।
4. अज्ञाता ~~xxxx~~ क अज्ञात को पच्च. दे तो अशुद्ध ही पच्च. होगा।

यहाँ गाय का दृष्टांत जानना - यदि गायों की संख्या गाय का स्वामी और ग्वाला, दोनों जाने तो गायों को संभालने का मूल्य स्वामी भी सुख पूर्वक देता है और ग्वाला भी सुखपूर्वक लेता है। ऐसे लौकिक चतुर्भंगी जानना।

अब. B. प्रत्याख्याता द्वार पूर्ण (देखें द्वार गा. 1558 Pg. 88)। C. प्रत्याख्यातव्य द्वार - प्रत्याख्यातव्य ऐसे अशनादि पहले कहे गए किंतु द्वार शून्य न रहे इसलिए कहते हैं -

गा. 1619 प्रत्याख्यातव्य 2 प्र. द्रव्य, भाव। द्रव्य से अशनादि, भाव से अज्ञानादि प्रत्याख्यातव्य हैं।

अब. C. प्रत्याख्यातव्य द्वार पूर्ण। D. पर्षदा द्वार -

पर्षदा का वर्णन पहले सामायिक निर्युक्ति में मुद्गशैल पत्थर, मेघ, घटादि दृष्टांतो से किया है। (देखें भाग 1 Pg.)।

गा. 1620 यहाँ कुछ विशेष कहते हैं → पर्षदा 2 प्र. उपस्थित = जो शास्त्र सुनने की इच्छा से आए हो, अनुपस्थित = जो नहीं आई हो। इसमें उपस्थित पर्षदा को कहना चाहिए, अनुपस्थित को नहीं।

उपस्थित पर्षदा 2 प्र. - सम्यक् प्रकार से उपस्थित, मिथ्या प्रकार से उपस्थित। मिथ्या उपस्थित में आर्य गोविंद का दृष्टांत - गोविंद नामक बौद्ध भिक्षु था x वह उत्कृष्ट वादी था x एकदा जैन आ. से वाद में हारा x उसने सोचा - जैन सिद्धांत जाने बिना मैं नहीं जीत सकूँगा x इसलिए अन्यत्र जाकर आ. के पास दीक्षा लेकर पढ़ने लगा... कथा अन्य ग्रंथ से जानना।

जैसे यह गोविंद उपस्थित हुआ किंतु दूसरे को हराने के लिए पढ़ने वाला होने से वह मिथ्या उपस्थित है। ऐसे मिथ्या उपस्थित को नहीं कहना चाहिए। सम्यक् उपस्थित को कहना चाहिए।

सम्यक् उपस्थित भी २ प्र.- भावित और अभावित। भावित पर्षदा को कहना चाहिए, अभावित को नहीं।

भावित पर्षदा भी २ प्र.- विनीत, अविनीत। अविनीत को नहीं कहना चाहिए, विनीत पर्षदा को कहना चाहिए।

विनीत पर्षदा भी २ प्र.- व्याक्षिप्त, अव्याक्षिप्त। व्याक्षिप्त यानि जो सुनते-सुनते सिलाई वि. अन्य व्यापार भी करे, अव्याक्षिप्त यानि जो मात्र सुने। इनमें अव्याक्षिप्त पर्षदा को कहना।

अव्याक्षिप्त पर्षदा भी २ प्र.- उपयुक्त, अनुपयुक्त। अनुपयुक्त यानि जो सुने कुछ, और सोचे दूसरा। उपयुक्त यानि जो तच्चित्त, तन्मन होकर सुने। इनमें उपयुक्त पर्षदा को कहना।

ऐसे सम्यक् उपस्थित, भावित, विनीत, अव्याक्षिप्त, उपयुक्त पर्षदा को पच्च. कहना चाहिए। ये पर्षदा योग्य है। (इन पर्षदाओं के कुल ६५ भांगे होंगे) शेष ६३ भांगे अयोग्य हैं। अयोग्य में प्रथम पर्षदा- सम्यक् उपस्थित, भावित, विनीत, अव्याक्षिप्त, अनुपयुक्त

ऐसे पच्च. प्रथम पर्षदा को कहना, शेष को नहीं। केवल पच्च. नहीं, पूरा आवश्यक या पूरा श्रुतज्ञान ऐसी पर्षदा को कहना चाहिए।

प्रव. D. पर्षदा द्वार पूर्ण (देखें द्वार गा. 1588 पृ. 88)। E. कथन विधि- यह वृद्धवाद है- किस विधि से पच्च. कहना चाहिए? उ. पहले प्राणातिपातादि मूलगुण

कहने चाहिए। फिर साधुधर्म कहने पर उसके लिए अशक्त को श्रावकधर्म कहना चाहिए। यदि पहले श्रावक धर्म कहे तो शक्ति होने पर वह श्रोता श्रावक धर्म में ही धृति करेगा। उत्तरगुणों में भी 6 मासिक तप से शुरू कर जिसके योग्य जो पच्च. हो, वह पच्च. अशठता पूर्वक उसे कहना चाहिए।

अथवा यह कथन विधि है –

भा.1621 आज्ञा यानि आगम। आगम से ग्राह्य अर्थात् आगम से निश्चित होने वाला अर्थ प्रत्याख्यानादि। ऐसे आगम से सिद्ध होने वाले अर्थ को आगम से ही कहना चाहिए, दृष्टांत से नहीं। तथा दृष्टांत से जानने योग्य अर्थ को 'प्राणातिपातादि से अनिवृत्त को ये-ये दोष होते हैं' वि. दृष्टांत से कहना चाहिए।

अथवा सामान्य से आज्ञा/आगम से ग्राह्य अर्थ (e.g. सौधर्मादि कल्प) आज्ञा से ही कहना चाहिए; दृष्टांत से नहीं क्योंकि वस्तुतः उसका दृष्टांत असंभव है। तथा दार्ष्टान्तिक यानि दृष्टांत से जानने योग्य अर्थ 'उत्पादादिमान् आत्मा वस्तुत्वात्, घटवत्' आदि दृष्टांत से कहना चाहिए। यह कथन विधि है।

अन्यथा कथन विधि से विपरीत कहने में विराधना है क्योंकि ① वह अप्रतिपत्ति का हेतु होगा ② अधिकतर सम्मोह करने वाला होगा।

अव. E. कथनविधि द्वार पूर्ण (द्वार गा. 1558 Pg. 88) | F. फल द्वार –

भा.1622 पच्च. का फल 29. – इहलोक फल में धम्मिल्लादि दृष्टांत, परलोक में रामन्नकादि दृष्टांत हैं।

धम्मिल्लकुमार का उदाहरण धम्मिल्लहिंडी से जानना। आदि शब्द से आमर्षौषधि वि. लब्धियाँ जानना।

धम्मिल्ल कुमार – कुशार्त नगर x सुरेंद्रदत्त सेठ, सुभद्रा सेठानी x धम्मिल्ल पुत्र x यशोमति कन्या के साथ विवाहित किया x किंतु धर्म में रुचि होने से पत्नी से भी वैरागी था x चिंतातुर माता ने संसारकुशल बनाने जुआरी को सौंपा x क्रमशः वेश्यागामी हुआ x पुत्र के कहने अनुसार माता-पिता धन भेजते रहे x पुत्रवियोग से ही मर गए x यशोमति भी धन भेजते हुए निर्धन होने से पिहर गई x धन न मिलने पर वेश्या की माता ने धम्मिल्ल को घर से निकाल दिया x घूमते हुए भगड़दत्त मुनि मिले x उन्होंने स्वयं का चरित्र सुनाकर प्रतिबोध दिया x किंतु धम्मिल्ल ने संसारसुख की इच्छा होने से उन्हें उपाय पूछा x परिणाम शुभ देखकर मुनि ने कहा - 6 मास तक आयंबिल-खाम चौविहार, द्रव्य से मुनिवेश धारण कर मुनित्व पालना, निर्दोष गोचरी वापरना, 9 लाख नवकार के साथ मेरे द्वारा दिए हुए मंत्र का जाप करना x धम्मिल्ल ने वैसा किया x देव प्रसन्न होने से और पूर्वभव के कर्म क्षीण होने से राज्य-पत्नी-पुत्रादि सब मिले x अंत में धर्मरुचि मुनि से प्रतिबोधित होकर परिवार सहित दीक्षा लेकर देवलोक गया।

देवलोक फल में दामन्नक – रायपुर x एक कुलपुत्र x उसका जिनदास मित्र श्रावक x एकदा साधु के पास गया x मछली के मांस का पच्च. लिया x दुकाल में लोग मछली खाने लगे x साले और पत्नी द्वारा खिंसा होने पर वह मछली पकड़ने गया x सरोवर में मछली पकड़ता किंतु पच्च. याद आने पर छोड़ देता x ऐसा 3 दिन तक 3-3 बार किया x अंत में अनशन कर राजगृह में मणिहार सेठ का पुत्र दामन्नक बना x 8 साल का हुआ, तब पूरा कुटुंब मारी से मर गया x वह सागरपोत नामक सार्थवाह के घर रहा x एकदा मुनि पधारे x मुनि ने संघाधक साधु को कहा – यह दामन्नक इस घर का स्वामी होगा x सार्थवाह ने सुनकर उसे चंडाल को मारने के लिए सौंपा x चंडाल ने उंगली छेदकर उसे डराया और दूर ले जाकर छोड़ दिया x भागते हुए उसे उसी सार्थवाह के श्वसुर ने पुत्र रूप में रखा x युवान् हुआ x एकदा सार्थवाह वहाँ गया x इस युवान् को देखकर उपाय से परिजन को

पूछने पर पता चला - यह अनाथ कहीं से आया है x उसे पहचान लिया x डरे हुए ऐसे सार्थवाह ने पत्र में लिखा - 'धोए बिना और साफ किए बिना पैर वाले इस पुरुष को विष देना अर्थात् आए वैसे ही पैर धोने के पहले ही विष देना' x यह पत्र उसे देकर कहा - राजगृह जाकर मेरे पुत्र को देना x वह राजगृह गया x राजगृह के बाहर देवकुल में सोया x उसी सार्थवाह की विषा नाम पुत्री वहाँ पूजा करने आई थी x इस पुरुष को देखा x स्वयं के पिता की मुद्रा से मुद्रित पत्र देखकर उसने खोलकर पढ़ा x ~~विष~~ उसने अनुस्वार मिटा दिया और कन्यादान शब्द जोड़कर पुनः मुद्रितकर पत्र वहाँ रख दिया x धनन्नक ने पत्र सार्थवाह के पुत्र को दिया x स्वजनों ने विषा का विवाह उससे किया x थोड़े दिन बाद सार्थवाह आया x पुत्री के विवाह की बात जानकर गुस्सा हुआ x चंडात्य को बुलाकर घोड़े देने के लिए डाँटा x चंडात्य - अब उसे पक्का मार दूँगा x सार्थवाह - उसे मातृदेवी की पूजा करने आज मंदिर भेजूँगा, तू मार देना x

घर आकर सागरपोत ने रात को धनन्नक-विषा को मंदिर भेजा x दोनों को रास्ते में सार्थवाह का पुत्र समुद्रदत्त मिला x देवी पूजा की बात सुनकर बोला - इस समय मेरी बहन को लेकर वहाँ जाना ठीक नहीं है इसलिए आप वापस जाओ, मैं ये नैवेद्यादि देवी को चढ़ाकर आता हूँ x समुद्रदत्त मंदिर गया x जैसे ही अंदर घुसा वैसे ही चंडात्य ने मार दिया x

स्वयं के पुत्र के मरण को जानकर सागरपोत हृदय फटने से मर गया x राजा ने धनन्नक को घर का स्वामी बनाया x

एकदा सुबह मंगलपाठकों ने धनन्नक को गीत सुनाया - जिसके पक्ष में यमदूत होता है, उसे किए हुए अनर्थ भी उसके लिए बहुत लाभकारी होते हैं x यह

सुनकर दामन्नक ने लाख रू. इनाम दिया x ऐसे ३ बार सुनाने पर ३ बार इनाम दिया x राजा ने सुना x इतना इनाम देने से आश्चर्यचकित होकर राजा ने उसे कारण पूछा x दामन्नक ने स्ववृत्तांत कहा x राजा ने उसे नगरश्रेष्ठी बनाया x पुनः साधु के संयोग से उसे बोधिलाभ हुआ x पुनः धर्म कर देवलोक गया।

अव. ऐसे शुद्ध पञ्च. से देवलोक मिलता है। वहाँ पुनः बोधिलाभ, सुकुल प्रत्यागति वि. सुख की परंपरा से मोक्ष होता है। कितने ही जीव उसी भव में मोक्ष जाते हैं। इसीलिए प्रधान फल बताते हुए उपसंहार करते हैं:-

गा. 1623 जिनवर द्वारा उपदिष्ट इन पञ्च. का सेवन कर अनंतजीव जल्दी शाश्वत सुख वाले मोक्ष को प्राप्त हुए।

प्र. यह फल तो गा. 1596-8 (Pg. 168) में कहा गया। यहाँ पुनः क्यों कहा?

उ. वहाँ वस्तुतः प्रत्याख्यान के स्वरूप के द्वार से कहा था अर्थात् किसी भी वस्तु के स्वरूप के निरूपण में फल भी आने से वहाँ कहा था। यहाँ लोकनीति से कहा है अर्थात् लोकनीति यह है कि किसी भी वस्तु के अंत में फल कहना। अथवा पञ्च. में प्रवृत्ति का हेतु होने से इस द्वार से ही उद्धरण कर स्वरूपकथन में फल भी कहा, इसलिए दोष नहीं है।

अव. अनुगम कहा गया (देखें Pg. 163-4 अव.)। अब नय द्वार (देखें अनुयोग द्वार chart भाग 1 Pg. 111)। नय सामान्य से 7 होते हैं - नैगम - संग्रह - व्यवहार - ऋजुसूत्र - शब्द - समभिरूढ - एवंभूत। इनका स्वरूप विस्तार से सामायिक अध्ययन में कहा गया (भाग 2 Pg.)। यहाँ पुनः नहीं कहते हैं। यहाँ स्थान शून्य न रहे इसलिए इनका ज्ञान-क्रिया x नय में अंतर्भाव कर संक्षेप से कहते हैं।

इसमें ज्ञान नय का मत → ~~ऐक~~ ऐहिक और आमुष्मिक फल प्राप्ति में ज्ञान ही प्रधान कारण है क्योंकि यह युक्ति युक्त है।

गृहीतव्य यानि उपादेय, अगृहीतव्य= हेय। ऐसे उपादेय - हेय और उपेक्षणीय अर्थों को जानकर ही ऐहिक - आमुष्मिक फल प्राप्ति के लिए जीव को प्रयत्न करना चाहिए।

ऐहिक उपादेय - स्त्री, चंदनादि; हेय - विष, कंटकादि; उपेक्षणीय - तृणादि।

आमुष्मिक उपादेय - सम्यग्दर्शनादि; हेय - मिथ्यात्वादि; उपेक्षणीय - शत्रु का अभ्युदयादि।

(a) जिस अर्थ को जाना हो, उसमें ही प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि सम्यग्ज्ञान में वर्तते जीव को ही अविसंवादी फल मिलता है।

(b) आमुष्मिक फल के लिए भी जीव को ज्ञान में ही प्रवृत्ति करना चाहिए क्योंकि आगम में कहा है - पढमं णाणं तओ दया।

(c) तथा तीर्थंकर द्वारा भी अकेले अगीतार्थ का विहार निषिद्ध है क्योंकि अंध द्वारा खींचा जाता अंध भी सम्यक् रास्ते पर नहीं जाता।

(d) ये तो क्षायोपशमिक ज्ञान के आश्रय से कहा। क्षायिक ज्ञान में भी ज्ञान का ही विशिष्ट फल साधकत्व जानना क्योंकि संसार समुद्र के किनारे रहे, दीक्षा वाले, उत्कृष्ट तप-चारित्र वाले तीर्थंकर को भी तब तक मोक्ष नहीं मिलता जब तक केवलज्ञान उत्पन्न न हो।

ईएसे जो उपदेश ज्ञान की प्रधानता बताने में तत्पर है, वह ज्ञान नय। ईयह नय नामादि 6 प्र. के पच्च. में ज्ञानरूप पच्च. को ही मानता है, क्योंकि पच्च. ज्ञानात्मक है। क्रियारूप पच्च. तो ज्ञानरूप पच्च. का कार्य होने से उसके अधीन है, इसलिए उसे नहीं मानता। अर्थात् पच्च. को ~~मुख्य रूप~~ परिणाम रूप मानता है। क्रियारूप को गौण मानता है।

क्रिया नय का मत → ऐहिक-आमुष्मिक फल की प्राप्ति में क्रिया ही प्रधान

(a) कारण है क्योंकि यह युक्ति युक्त है। ग्रहीतव्य और अग्रहीतव्य ऐसे ज्ञात अर्थ में फल प्राप्ति के अर्थी को क्रिया रूप ~~अर्थ~~ यत्न करना ही चाहिए क्योंकि यत्न बिना ज्ञान वाले को भी इच्छित अर्थ प्राप्त नहीं होता।

(b) आमुष्मिक फल के अर्थी जीव को भी क्रिया ही करना चाहिए क्योंकि आगम में कहा है - 'सव्वेसु वि तेण कयं तवसंजमप्पमुज्जमंतेणं' अर्थात् जो तप-संयम में उद्यम करता है, उसने चैत्य-आचार्य-कुल-गण-संघ-प्रवचन-श्रुत सबका कर्तव्य ~~उसने~~ किया है।

(c) तथा तीर्थंकर द्वारा भी क्रियारहित ज्ञान निष्फल कहा गया है क्योंकि देखने की क्रिया से रहित ऐसे अंधे के लिए लाखों-करोड़ों दीपक भी निष्फल है।

(d) यह तो क्षायोपशमिक चारित्र-क्रिया के आश्रय से कहा। क्षायिक चारित्र में भी क्रिया का ही प्रकृष्ट फलसाधकत्व जानना क्योंकि केवलज्ञान वाले तीर्थंकर को भी तब तक मोक्ष नहीं मिलता जब तक वे सभी कर्म रूप इंधन के लिए अग्नि समान और ५ ह्रस्वाक्षर के उच्चार काल तक रहने वाली सर्वसंवर रूप चारित्र क्रिया न करे।

ऐसे जो उपदेश क्रिया की प्रधानता बताने में तत्पर है, वह क्रिया नय। यह नय नामादि ६ निक्षेप के पक्ष में क्रियारूप पक्ष को ही मानता है। क्योंकि पक्ष क्रिया रूप ही है। ज्ञान तो क्रिया रूप पक्ष के लिए ही ग्रहण किया जाता होने से अप्रधान है। इसलिए यह नय उसे गौण रूप मानता है।

ऐसे ज्ञान-क्रिया नय के स्वरूप को सुनकर उनका अभिप्राय न जानने वाला संशयापन्न शिष्य कहता है - इसमें तत्त्व क्या है? क्योंकि दोनों पक्ष में युक्ति है।

आचार्य - जगत् में सभी वस्तु सामान्य रूप ही है अथवा विशेष रूप ही है अथवा

उभयरूप है किंतु दोनों एक-दूसरे से निरपेक्ष हैं' इत्यादि सभी मूल नयों और उनके भेदों की बहुत प्रकार की वक्तव्यता को सुनकर तथा कौन सा नय नामादि में से कौन से निक्षेप को मानता है, ये सब सुनकर 'जो साधु मूलगुण-रूप-क्षम और उत्तरगुण रूप चारित्र में स्थित है, वह साधु सर्वनय को सम्मत है क्योंकि सभी नय भाव निक्षेप को तो मानते ही हैं'। [अतः साधु को आंतरिक परिणाम और बाह्य आचरण से युक्त होना चाहिए]।

शिष्यहिता टीका में प्रत्याख्यानाध्ययन का विवरण समाप्त।

व्याख्याध्ययनमिदं यदवाप्तमिह शुभं मया पुण्यम्।
शुद्धं प्रत्याख्यानं लभतां भव्यो जनस्तेन॥

• शिष्यहिता नामक आवश्यक सूत्र की टीका समाप्त हुई।

कृतिः सिताम्बराचार्यजिनभट्टनिगदानुसारिणो विद्याधरकुलतिलकाचार्यजिनदत्त-शिष्यस्य धर्मतो जाइणीमहत्तरासूनोरल्पमतेराचार्यहरिभद्रस्य।

यदिहोत्सूत्रमज्ञानाद् व्याख्यातं तद् बहुश्रुतैः।
क्षन्तव्यं कस्य सम्मोहः छद्मस्थस्य न जायते॥1॥
यदर्जितं विरचयता सुबोध्यां पुण्यं मयाऽऽवश्यकशास्त्रटीकाम्।
भवे भवे तेन ममैवमेव भूयाज्जिनोक्तानुमते प्रयासः॥2॥
अन्यच्च सन्त्यज्य समस्तसत्त्वा मात्सर्यदुःखं भवबीजभूतम्।
सुखात्मकं मुक्तिपदावहं च सर्वत्र माध्यस्थमवाप्नुवन्तु॥3॥

आवश्यक टीका समाप्त हुई। अनुष्टुप् छंद से इसका मान प्रत्येक अक्षर की गणना द्वारा 22000 है।

इति श्रीआवश्यकसूत्रस्य भद्रबाहुस्वामिकृतनिर्युक्तौ हारिभद्रीयवृत्तेः मत्यधारिहेमचन्द्र-सूरिकृतटीप्पणकसहिता हिन्दीभाषायां अनूद्य आत्मानुस्मृतये गुरुकृपया लिखिता समाप्ता च। या काचित् ~~वि~~ अर्थविप्रतिपत्तिः यदि भवेत् सा क्षन्तव्या शोधनीया च विद्वद्जनैः यतः वृत्तिकारेणापि उक्तं- 'कस्य सम्मोहः छद्मस्थस्य न जायते' ततः मादृशस्य मत्स्यमतेः का वार्ता ?

स्थानम् - गोल्पुड़ीजैनसङ्घः, विजयवाड़ा, आन्ध्रप्रदेश।

समाप्तिवासरः - चैत्रकृष्णद्वितीया वि.सं २०७५, 2-4-2018